परिमित खेती

केला

जैन तकनीक द्वारा™

जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि.

छोटे छोटे कदम, आसमाँ छूने का दम.®

जैन™ टिश्यूकल्चर

अधिक उत्पादन – अधिकतम लाभ।

खेती की मूल्य श्रृंखला की पूर्णता

अधिक और उत्तम उत्पादन करने के लिए किसानों को हम मदद करते हैं।

टिश्युकल्चर पौध और उच्च गुणवत्ता के बीज

जैविक खाद और सुक्ष्मजीव संवर्धक

पीवीसी, एचडीपीई पाईपिंग यंत्रणा

टपक और तुषार सिंचाई यंत्रणा

नियंत्रित खेती

बंजर जमीन विकास

प्रशिक्षण तथा विस्तार

संशोधन तथा विकास

अनुबंधित कृषिव्यवहार

किसानों से हम फल तथा सब्जी खरीदते हैं।

उसके पश्चात हम उसपर स्थानिक तथा विदेशी बाजार के लिए प्रक्रिया करते हैं।

प्याज तथा सब्जियों का निर्जलीकरण

अत्याधुनिक निर्जलीकरण कारखाना

विश्वस्तरीय खाद्य प्रक्रिया संयंत्र

फल प्रक्रिया

परिमित श्रेणी

केला

जैन तकनीक द्वारा ™

परिमित खेती : केला, जैन तकनीक द्वारा

प्रथम संस्करण - २०१४

लेखक
श्री. के. बी. पाटील

अनुवादक
श्री. एस. सी. मोदी, डा. यू. बी. पाण्डेय

प्रकाशक
जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि., ऐग्री पार्क, जैन हिल्स, जलगाँव.

मुद्रक
विक्रम प्रिंटर्स, ३१ तथा ३४, पार्वती इंडस्ट्रीज इस्टेट, पुणे सतारा रोड़, पुणे-४११००९

मुखपृष्ठ
श्री. भारगव पवार, महाडूंग तह. मालशिरस जि. सोलापुर, इनके केले के बगीचे की फोटो

मुखपृष्ठ संकल्पना
श्री. अशोक भँवरलाल जैन

रुपरेखा
इकबाल मन्सूरी

छायाचित्र
राहुल भारंबे, गोविंद पाटिल, किशोर रवाले, ईश्वर राणा, राजेंद्र माली

सम्पादन
इकबाल मन्सूरी, आरिफ शेख

सहायता
मोहन चौधरी, पंकज श्रीवास्तव

मूल्य-५० रुपये

वैश्विक कॉपी राइट सर्वाधिकार सुरक्षित - जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि. ऐग्री पार्क, जैन हिल्स, जलगाँव. (महाराष्ट्र, भारत)

जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि. के लेख, या इस पुस्तिका के या इसके किसी भी भाग का पुर्नमुद्रण किसी भी या कोई भी प्रकार से संग्रह करने, प्रसारण करने, इलेक्ट्रानिक, मेकैनिकल व अन्य तरीके से बिना पूर्व अनुमति के उपयोग करना अवैधानिक है।

संस्थापक में कृषि संवर्धन की प्रेरणा वंशानुगत है। प्रथम पीढ़ी के इस उद्‌मी को कृषि के बारे में गहरा कृतिशील अनुभव भी प्राप्त है। कृषक गण एवं मातृभूमि के लिए लगातार सर्वश्रेष्ठ तकनीक उपलब्ध कराने के उनके दृढ़ संकल्प ने उन्हें लगातार इस क्षेत्र में विकास के लिए प्रेरित किया है।

- भारत में एक अरब जनसंख्या का ७०% भाग कृषि से जुड़ा है। कृषि संस्कृति इस वर्ग की सभ्यता की परिचायक है और भारतीय अर्थव्यवस्था की तो यह रीढ़ है।
- हमारे कृषि समाज को एक औद्योगिक समाज के रुप में परिवर्तित होने में कई सदियाँ लगेंगी। इस दौरान कृषि, कृषि आधारित व्यवसाय तथा कृषि उद्योग हेतु प्राथमिकता के तौरपर विज्ञान व प्रौद्योगिकी से सहायता लेने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सहायता से ही कृषि के क्षेत्र में अच्छी वृद्धि हो सकेगी। केवल इस प्रकार की सोच ही दीर्घ स्थाईत्व, टिकाऊ सुख समृद्धि, सर्वोन्नति तथा स्वनिर्भरता के प्रति आश्वासन दे सकती है।
- अन्य किसी भी क्षेत्र की शानदार व उल्लेखनीय प्रगति भी कृषि विकास का पर्याय नहीं हो सकती। **(अप्रैल १९७९)**
- सिंचाई के बिना कृषि में वांछित प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः भविष्य में कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि के लिए पानी की उपलब्धता एवं प्रबन्धन महत्वपूर्ण है।'प्रति बूँद, फसल भरपूर' एक राष्ट्रीय वरीयता होनी चाहिए। **(मार्च १९९१)**

- जल की उपलब्धता अपने आप में अधिक उत्पादन व उत्पादकता की गारंटी नहीं है। सिंचाई के लिए पानी पम्प के माध्यम से खेत के किनारे तक व उसके बाद फसल की जड़ों तक ठीक से पहुँचाना आवश्यक है। उसके बगैर कृषि विकास सम्भव नहीं है। उसके लिये विश्वसनीय व सदैव प्राप्त होनेवाली हरित ऊर्जा की उपलब्धता होना अनिवार्य है।
- कृषि उत्पादन में वृद्धि होने के उपरांत हमने प्रसंस्करण कारखानों का निर्माण नहीं किया तो कृषि उत्पादनों का मूल्यवर्धन नहीं होगा। प्रक्रिया प्रकल्प के साथ ही शीत गृह, कृषि उत्पादनों की उचित विपणन व्यवस्था व उसकी जानकारी व तकनीक का वृहद पैमाने पर उपयोग आवश्यक है। **(जून १९९५)**
- अशासकीय औद्योगिक व कृषिविषयक संस्थाओं ने भी सामाजिक दायित्त्व को ध्यान में रखते हुए सामाजिक समस्याओं की ओर संवेदनशीलता की दृष्टि से देखा तो सर्वस्तर विकास पूरा किया जा सकता है। अपने उद्योग व्यवसाय के बारे में एकात्मिकता से विचार कर उन उद्योग व्यवसाय को पर्यावरण तथा समाज के लिए करना आवश्यक है। यह तीनों घटक अनिवार्य है **(१९९६)**
- संस्थाओं को सामाजिक समस्याओं को समझते हुए सर्वसामान्य जनता के सर्वांगीण विकास के लिए आगे आना चाहिए। व्यावसायिक प्रगति प्राप्त कर संपूर्ण विकास और पर्यावरण को संभालते हुए गांधीजी द्वारा दी हुई ट्रस्टीशिप की संकल्पना खुद को करना चाहिए जिससे सामाजिक तनाव कम करते हुए पूर्ण विकास की ओर हम जा सकें। **(२००१)**
- भविष्य में कृषि की सफलता के प्रति आशान्वित होने के लिये जैव प्रोद्योगिकी, सूक्ष्म जीवविज्ञान, अति सूक्ष्म प्रोद्योगिकी और सूचना एवं संचार के इलेक्ट्रॉनिक तंत्र का समावेश ही एकमात्र रास्ता है। इसमें समग्र सिंचाई समाधान (Integrated Irrigation Solution) का एक विशिष्ट स्थान है।
- दुर्लभ जल स्त्रोत का प्रबन्धन न केवल कृषि क्षेत्र के लिये अपितु सामाजिक आर्थिक जीवन के अन्य क्षेत्रों के लिये अब भी एक चुनौती है। भविष्य की उन्नत तकनीक जैसे नपी तुली खेती और सूक्ष्म सिंचाई पद्धति द्वारा उपलब्ध जल स्त्रोत का उपयोग, पुनर्प्रयोग, जल का शुद्धिकरण व जल स्त्रोत में कमी की पूर्ती करने से कृषी में जल की मांग कम होगी। इस प्रकार समग्र जल प्रबन्धन (Integrated Water Management) से खेती लाभकारी एवं टिकाऊ बनेगी। **(जनवरी २०१४)**
- पूर्ण नियंत्रित खेती तंत्र जैसे जलकृषी, वायुकृषि, तीव्र गति पौध संवर्धन और हरित गृह में उर्ध्वाघर खेती को अपनाने के लिये, कम से कम शहरी क्षेत्रो में, प्रोत्साहित करना पड़ेगा।
- कृषि देश का सबसे बडा निजी क्षेत्र होते हुये भी वैश्वीकरण के इस दौर में अपवाद क्यों है! इसे हमारी आशाओं के अनुरूप विकसित करने के लिये यह आवश्यक है की कृषि को पर्याप्त संस्थागत ढाँचा व तकनिकी सहायता मिले तथा संसाधनो का गैर कृषि क्षेत्र से कृषि क्षेत्र की ओर प्रवाह हों। **(जनवरी २०१४)**

अनुक्रमणिका

अं.नं.	विवरण	पृष्ठ क्रं.
१)	जैन इरिगेशन एवं टिश्यूकल्चर विभाग	१
२)	प्रस्तावना	३
३)	भारत में केले की वर्तमान स्थिती	८
४)	केला लगाने के लिए महत्त्वपूर्ण व आवश्यक घटक	१२
	१. जलवायु	१२
	२. भूमि	१२
	३. केला लगाने के पूर्व भूमि का चयन	१३
	४. केला लगाने के लिए जमीन की तैय्यारी	१३
	५. क्यारी तैयार करना	१४
	६. आधुनिक पद्धति से केला लगाने के लिए उपयुक्त किस्म का चयन	१५
	७. बीज (कंद व पौधे)	१५
	८. टिश्युकल्चर पौधों का चयन व आधार	१८
	९. रोपाई का समय	१९
	१०. केला लगाने की दूरी	१९
	११. जैन टिश्युकल्चर केला रोपाई करते समय रखी जानेवाली सावधानियाँ	२०
	१२. जल प्रबन्धन	२३
	१३. पोषक तत्व प्रबन्धन	२७
	१४. बगीचे का प्रबन्धन	३५
	१५. परिवर्तनशील वातावरण में केला फसल का प्रबन्धन	३८
	१६. केला के कीट एवं रोग प्रबन्धन	४२
	१७. केले की कटाई	५२
५)	केला का कटाई उपरान्त प्रबन्धन	५३
६)	जैविक केला उत्पादन	६०
	१. प्रस्तावना	६०
	२. जैविक खेती	६०
	३. जैविक खेती की प्रमुख विशेषताएँ	६०
	४. जैविक केला उत्पादन क्रमानुसार कार्य	६१
७)	पारम्परिक एंव टिश्युकल्चर पद्धति का तुलनात्मक अर्थशास्त्र	६७
८)	केलाः अनेक व्याधियों की एक अचूक औषधि	

१. जैन इरिगेशन एवं टिश्यूकल्चर विभाग

जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि., कम्पनी का उद्योग क्षेत्र में पदार्पण १९६२ में कच्चे तेल के वितरण व्यवसाय से आरम्भ हुआ। परन्तु परिवार की पृष्ठभूमि कृषि योग्य होने के नाते कृषिपूरक व्यवसाय की ओर अधिक आकर्षित होना स्वाभाविक था। इसी के फलस्वरूप वर्ष १९७८ में पपीता के दूध से पपेन के उत्पादन से लेकर पीवीसी पाईप, टपक सिंचन प्रणाली, सब्जी एवं फल प्रसंस्करण प्रक्रिया व टिश्युकल्चर पौधों के उत्पादन की श्रृंखला बढ़ती गई। आज जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि. का बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सूची में सम्माननीय स्थान है।

भारत में केला के सर्वाधिक उत्पादन के लिये प्रसिद्ध जलगाँव जिले में केला उत्पादन के सभी पहलुओं का सघन अध्ययन कर केला फसल व केला उत्पादन करनेवाले कृषकों को नव संजीवनी देने का दृढ़ संकल्प कम्पनी ने किया। पारम्परिक पद्धति में केला की कंद पद्धति से बुवाई, खुली नालियों द्वारा की जानेवाली सिंचाई व अघुलनशील खाद की मात्रा के सघन उपयोग, केला की उत्पादकता व गुणवत्ता कम होने का कारण है। इसलिये टपक सिंचाई उत्पाद का निर्माण कर पानी की बचत व उत्पादकता में वृद्धि कर कम्पनी ने खेती के तरीके में अभूतपूर्व परिवर्तन किया है। अघुलनशील रूप में दिये जाने वाले खाद के बजाय पानी में घुलनशील खाद टपक सिंचाई के माध्यम से दिया जाने लगा व उसके साथ ही टिश्युकल्चर केला के पौधे उत्पादित कर केला के अर्थशास्त्र को ही कम्पनी ने तकनीकी सहायता से बदल दिया है। यह सब करते हुए बसराई जैसी कम उत्पादन देनेवाली किस्म के विकल्प के रूप में अधिक उत्पादन क्षमता व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सर्वाधिक मांग वाली ग्रैन्डनैन किस्म को भारतीय केला खेती में स्थानापन्न करने का कार्य कम्पनी ने इस दौरान किया है।

वर्ष १९९४-९५ में कम्पनी ने मात्र ४५००० टिश्युकल्चर केला पौधों का विक्रय कर इस क्षेत्र में पदार्पण किया व भारतीय केला उत्पादक कृषकों की प्रगति में कम्पनी विश्वसनीय सहयोगी सिद्ध हुई। कम्पनी के पास वर्तमान में १० करोड़ केला, २ करोड़ अनार और १ करोड़ स्ट्रॉबेरी के पौध बनाने की क्षमता है। कम्पनी के द्वारा टिश्यूकल्चर पौध के हार्डनिंग का कार्य मध्य भारत के जलगाँव, दक्षिण भारत के उद्मलपेठ और उत्तर भारत के अलवर शहर में किया जा रहा है, जिसके कारण कम्पनी भारत के सभी भागों में किसानों को पौध उपलब्ध करवाने में समर्थ है।

जैन इरिगेशन ने अनार टिश्यूकल्चर पौधों का निर्माण कर अनार के तेल्या रोग के नियन्त्रण/ प्रसारण रोकने का उल्लेखनीय कार्य किया है। आज केले के अतिरिक्त अनार एवं स्ट्रॉबेरी के टिश्यूकल्चर द्वारा तैयार किये गये रोग रहित एवं गुणवत्तायुक्त पौधें किसानों को उपलब्ध कराये जा रहे है। साथ ही संतरा, गन्ना, आलू, आम, अमरुद, नारियल, कॉफी, अदरक और हल्दी पर भी कम्पनी के वैज्ञानिकों द्वारा

अनुसंधान कार्य प्रगति पर है। अतः इन पौधों के भी गुणवत्तायुक्त पौधे भविष्य में किसानों को उपलब्ध करवायें जा सकेंगे।

पौधों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये टिश्यू का चयन कम्पनी द्वारा पोषित खुद की मातृ पौधशाला से किया जाता है। टिश्यूकल्चर के लिये चयनित टिश्यू का विषाणु एवं रोग परीक्षण उच्च तकनीक जैसे पी.सी.आर., आर.टी.पी.सी.आर., एलीसा एवं सूक्ष्मजीव कल्चर द्वारा अनिवार्य रुप से किया जाता है। इस परिक्षण में केला में पाया जानेवाला बनाना बंची टॉप वायरस (शीर्ष गुच्छा रोग - बीबीटीवी), कुकुम्बर मोजैक वाइरस (सीएमवी), बनाना स्ट्रीक वाइरस (बीएसवी) व बनाना बैक्ट मोजैक वाइरस (बीबीएमवी) का समावेश है। इसके अतिरिक्त प्रथम व द्वितीय दृढ़िकरण के दरमियान भी तैयार किये गये पौधों पर उपरोक्त समस्त विषाणुओं के लिये पुनः परीक्षण किया जाता है। इसके लिये कम्पनी ने स्वयं की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की विषाणु परीक्षण प्रयोगशाला स्थापित की है एवं पौधों का परीक्षण शासन द्वारा मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला में भी करवाया जाता है।

वर्ष २०११-१२ से कम्पनी द्वारा केला पौधों को प्लास्टिक कप में देना शुरू किया और कृषकों द्वारा दिये गये उत्तम प्रतिसाद से टिश्युकल्चर पद्धति में एक विशेष परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। इस तरीके से पौधे सुरक्षित पहुंचते हैं व पौधों को लगाते समय उनकी जड़ों को कोई क्षति नहीं होती। प्रयोग के तौर पर दिये गये उन पौधों की उत्तम वृद्धि हुई है व अधिक उत्पादन प्राप्त हुआ है। टिश्युकल्चर पौधों को उत्पादित करते समय गुणवत्ता को सदैव प्रथम प्राथमिकता दी जाती है। उत्पादित पौधे गुणवत्ता मानक पर सफल सिद्ध हों इसलिये जैन इरिगेशन की टिश्युकल्चर प्रयोगशाला ने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को अवधारित किया है। राष्ट्रीय मानक में टिश्युकल्चर प्रयोगशाला ने भारत सरकार के जैव प्रोद्योगिकी विभाग का एन.सी.एस. - टी.सी.पी. व अन्तर्राष्ट्रीय मानक में आई.एस.ओ. ९००१-२००८ प्रमाणीकरण प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त जैन इरिगेशन की विषाणु परीक्षण प्रयोगशाला, भारत सरकार के प्रयोगशाला के लिये निर्धारित एन.ए.बी.एल. द्वारा अधिकृत है। इस प्रकार से विभिन्न मानांकन प्राप्त करनेवाली यह देश की एकमात्र प्रयोगशाला है। जैन इरिगेशन को केला फसल के लिये उत्कृष्ट कार्यों के लिये अनेक पुरस्कारों से गौरवान्वित किया गया है। इनमें वर्ष १९९६ का नल्ला बभाई पुरस्कार, वर्ष २००४-०५ का गोल्डन पिकॉक पुरस्कार, वर्ष २००७ का राजीव गांधी राष्ट्रीय गुणवत्ता पुरस्कारों व प्रशस्तिपत्रों का समावेश है।

कम्पनी से टिश्यूकल्चर पौधे प्राप्त कर खेती करने वाले किसानों को कम्पनी के कृषि विशेषज्ञों द्वारा सस्य क्रियाओं सम्बंधी तथा सूक्ष्म सिंचाई व खाद व्यवस्थापन सम्बन्धी मार्गदर्शन भी प्रदान किया जाता है। समय-समय पर कृषि विशेषज्ञों द्वारा किसानों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किया जाता है।

२. प्रस्तावना

वैश्विक दृष्टिकोण से केला एक महत्वपूर्ण फल है। केला फल का महत्व और केला लगाने के बारे में हजारों वर्षों से रामायण जैसे पवित्र ग्रन्थों में उल्लेख है तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में (ईसा पूर्व ४००-३०० के मध्य) केला लगाने के महत्व को दर्शाया गया है। अजन्ता एवं एलोरा गुफाओं में केला के रंग चित्र केला फसल का इतिहास कथन करते हैं।

हमारे देश में केला उत्पादन अनेक वर्षो की परम्परा है फिर भी आधुनिक तकनीक में हम बहुत पीछे रहे हैं। वर्ष १९६२ में देश की उत्पादकता १२ मेट्रिक टन प्रति हेक्टर थी। उसके बाद के काल में अमोनियम सल्फेट, युरिया, सुपरफॉस्फेट आदि रासायनिक खाद देश में उपलब्ध हुई और केला उत्पादक कृषकों ने रासायनिक खाद का उपयोग करना शुरू किया इस कारण केला के उत्पादन में वृद्धि हुई और वर्ष १९८५ में उत्पादकता २३.६० मे. टन प्रति हेक्टर हो गई। परन्तु २२-२३ वर्ष की कालावधी में कृषकों ने खेती करने की पारम्परिक सिंचाई, खाद देने एवं कंद लगाने की पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं किया, इस वजह से उत्पादन में अधिक वृद्धि होना संभव नहीं था।

इसे एक चुनौती मानते हुये जैन इरिगेशन ने वर्ष १९८५-८६ से केला फसल के उत्पादन और गुणवत्ता में वृद्धि के लिये प्रयत्न करना शुरू किया। देश में सर्वप्रथम टपक सिंचाई प्रणाली के लिए प्रचार-प्रसार कार्य आरम्भ किया। इस अभियान में केला फसल को प्राथमिकता दी गई। इसके परिणामों से प्रेरणा लेकर अंगूर, गन्ना, सब्जियाँ, एवं फलवृक्ष लगानेवाले कृषकों ने टपक सिंचाई प्रणाली का उपयोग आरम्भ किया। फसल की आवश्यकतानुसार व जड़ क्षेत्र में वायु संधारण की स्थिति हमेशा बनी रहे इतना ही पानी देना व उसके साथ ही फर्टिगेशन करने की तकनीक विकसित करने का यश जैन इरिगेशन को प्राप्त हुआ। इन कारणों से वर्ष १९९५ में देश की उत्पादकता में ११३ प्रतिशत की वृद्धि होकर उत्पादन २८.७ मे. टन प्रति हेक्टर हो गया। महाराष्ट्र की उत्पादकता १३.६० मे.टन प्रति हेक्टर से बढ़ कर ४९.०० मे. टन प्रति हेक्टर हुई व जलगाँव जिले की उत्पादकता २४.८६ मे. टन प्रति हेक्टर से बढ़कर ५९.०० मे. टन प्रति हेक्टर हो गई।

पारम्परिक केला लगाने की पद्धति में उपयोग किये जानेवाले कन्दों से उत्पादन में यथायोग्य वृद्धि करना सम्भव न होने के कारण जैन इरिगेशन ने १९९४-९५ में अत्याधुनिक टिश्युकल्चर प्रयोगशाला आरम्भ की। ग्रैन्डनैन जैसी निर्यातक्षम किस्म सर्वप्रथम देश में लाकर कम्पनी ने उत्पादन वृद्धि का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन सब कारणों से एवं जैन इरिगेशन द्वारा विकसित परिशुद्ध खेती की तकनीक के

चित्र १ : टिश्युकल्चर पद्धति से तैयार केले के पौधें

फलस्वरूप महाराष्ट्र में केला फसल की दस वर्षो में औसत उत्पादकता ६५ मे. टन तक पँहुच गई। कई प्रगतिशील कृषकों की उत्पादकता ८७.११ मे. टन से १२७ मे. टन. प्रति हेक्टर तक हुई।

परिमित खेती वह खेती है जिसमें तकनीक एवं कृषि विज्ञान का प्रयोग फसल उत्पादन के सभी पहलुओं को नियंत्रित कर अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये किया जाता है और साथ ही मृदा एवं पर्यावरण सुरक्षा और खेती में चिरस्थाइत्व का भी ध्यान रखा जाता है। इस प्रक्रिया से खेती करने के लिये सभी कृषि कार्यो की समयबद्धता और कृषि आदानों एवं उपायों की मात्रा में सटीकता का पालन किया जाता है। इस कारण से ड्रिप सिंचाई, फर्टिगेशन व टिश्यूकल्चर तकनीक को अपनाया जाना आवश्यक हो गया है।

यद्यपि आज की स्थिति में तमिळनाडु राज्य का केला फसल क्षेत्र में देश में प्रथम स्थान है तथापि देश में सर्वाधिक केला उत्पादन का श्रेय महाराष्ट्र को प्राप्त है। महाराष्ट्र के कुल ७२००० हेक्टर क्षेत्र में से केवल जलगाँव जिले में ४७००० हेक्टर में केला लगाया जाता है व सम्पूर्ण देश का लगभग २० प्रतिशत उत्पादन अकेले जलगाँव जिले में होता है। अब जलगाँव के साथ साथ धुलिया, नंदुरबार, नांदेड, परभणी जिलो में भी अधिक क्षेत्र में केला फसल लगाई जाती है। पुणे, कोल्हापूर, सोलापुर, कराड, सतारा परिसर में गन्ना फसल पर आनेवाले रोग, चीनी कारखानों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति, चीनी की दरों की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कमी, पानी की निरन्तर दिनोदिन कमी होने से विकल्प के रूप में पश्चिम महाराष्ट्र के कृषकों का भी केला जैसी नकद फसल की ओर झुकाव हुआ है। इन सब कारणों से केला की आधुनिक तकनीक से खेती कैसे की जाय, इस ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया है।

३. भारत में केले की वर्तमान स्थिति

केला, विश्व का ९७.५ मिलियन टन वार्षिक उत्पादन वाला, महत्वपूर्ण फल है। यह भारत के लाखों लोगों की जीविका का आधार है। ४९०.७० हजार हेक्टर भूमि से प्रति वर्ष लगभग १६.९१ मिलियन टन केले का उत्पादन होता है व उत्पादकता प्रति हेक्टर लगभग ३३.५ टन है। प्रति हेक्टर ६० टन उत्पादन प्राप्त करने वाला महाराष्ट्र राज्य देश में प्रथम क्रमांक पर है। भारत में फलों के उत्पादन में केला का ३७ प्रतिशत भाग है।

तालिका ३ : वर्ष वार भारत में केला उत्पादन में वृद्धि

वर्ष	क्षेत्र (लाख हेक्टर)	वृद्धि (%)	उत्पादन (हजार मेट्रीक टन)	वृद्धि (%)	उत्पादकता (मे.टन/हे)	वृद्धि (%)
१९९१-९२	३८३.९	-	७७९०.०	-	२०.०	-
२००१-०२	४६६.२	२१.४३	१४२०९.९	८२.४१	३०.५	५२.०५
२००२-०३	४७५.३	२३.८०	१३३०४.४	७०.७८	२८.०	४०.००
२००३-०४	४९८.६	२९.८७	१३८५६.६	७८.८७	२७.८	३९.००
२००४-०५	५८९.६	५३.५८	१६७४४.५	११४.९४	२८.४	४२.००
२००५-०६	५६९.५	४८.३७	१८८८७.८	१४२.४६	३३.२	६६.००
२००६-०७	६०४.०	५७.३३	२०९९८.०	१६९.५५	३४.८	७४.००
२००७-०८	६५८.०	७१.३९	२३८२३.०	२०५.८१	३६.२	८१.००
२००८-०९	७०९.०	८४.६८	२६२१७.०	२३६.५४	३७.०	८५.००
२००९-१०	७७०.३	१००.६५	२६४६९.५	२३९.७८	३४.४	७२.००

स्रोत: राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (२०१२)

तालिका ४ : भारत में प्रदेशानुसार उत्पादन व उत्पादकता

क्र.	राज्य	वर्ष २००८ - ०९			वर्ष २००९ - १०			वर्ष २०१० - ११		
		क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन	क्षेत्र ००० हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन/ हे	क्षेत्र '०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन
१	तामिलनाडू	१२४.४००	६६६७.०००	५३.५९३	११३.७००	४९८०.९००	४३.८०७	१२२.२००	५३७८.५००	४४.०१४
२	महाराष्ट्र	८०.०००	४९६०.०००	६२.०००	८५.०० ०	५२००.०००	६१.१७६	८१.०००	५०५०.०००	६२.३४६
३	आंध्र प्रदेश	८०.१००	२८०४.०००	३५.००६	८०.६००	२८१९.६००	३४.९८३	८१.४००	२८४९.२००	३५.००२
४	गुजरात	६०.९००	३५७१.६००	५८.६४७	६१.९००	३७७९.८००	६१.०६३	६२.२००	३७९८.०००	६१.०६१
५	कर्नाटक	७५.४००	१९१८.८००	२५.४४८	१०४.४००	२१३२.३००	२०.४२४	८६.९००	२१६४.८००	२४.९११
६	मध्य प्रदेश	२८.८००	१४९८.०००	५२.०१४	३३.०००	१४५९.८००	४४.२३६	३३.०००	१४५९.८००	४४.२३६
७	बिहार	३१.३००	१३७३.६००	४३.८८५	३१.५००	१४३५.३००	४५.५६५	३२.०००	१४८८.०००	४६.५००
८	उत्तर प्रदेश	२.४००	८२.७००	३४.४५८	३०.४००	११३८.६००	३७.४५४	३१.०००	११८४.६००	३८.२१३
९	छत्तीसगढ़	९.३००	२४६.३००	२६.४८४	११.५००	२९६.९००	२५.८१७	१२.५००	३१४.८००	२५.१८४
१०	मणिपुर	५.६००	७१.७००	१२.८०४	४.०००	३३.७००	८.४२५	४.१००	३४.९००	८.५१२
११	पश्चिम बंगाल	३९.८००	९५४.१००	२३.९७२	४१.०००	९८२.२००	२३.९५६	४२.०००	१०१०.१००	२४.०५०
१२	असम	४७.९००	८५२.६००	१७.८००	५३.४००	८०५.२००	१५.०७९	५४.०००	८२७.३००	१५.३२०

क्र.	राज्य	वर्ष २००८ - ०९			वर्ष २००९ - १०			वर्ष २०१० - ११		
		क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन	क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन	क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन
१३	केरल	५९.८००	४७२.९००	७.९०८	५१.३००	४०६.२००	७.९१८	५५.५००	४५५.८००	८.२१३
१४	ओड़ीशा	२४.१००	३२७.१००	१३.५७३	२४.७००	४००.४००	१६.२११	२५.४००	३७२.८००	१४.६७७
१५	मिजोरम	८.७००	६६.४००	७.६३२	८.७००	२०७.७००	२३.८७४	९.२००	२२३.६००	२४.३०४
१६	त्रिपुरा	७.७००	७६.२००	९.८९६	७.५००	१०५.६००	१४.०८०	७.५००	१०५.६००	१४.०८०
१७	मेघालय	७.०००	८२.८००	११.८२९	७.०००	८२.८००	११.८२९	७.०००	८२.८००	११.८२९
१८	झारखंड	२.७००	५५.०००	२०.३७०	२.९००	५८.०००	२०.०००	३.२००	६४.३००	२०.०९४
१९	नागालैंड	२.७००	५९.०००	२१.८५२	६.३००	६२.७००	९.९५२	२.७००	५९.०००	२१.८५२
२०	गोवा	२.७००	२७.३००	१०.१११	२.३००	२५.१००	१०.९१३	२.३००	२५.१००	१०.९१३
२१	पाँडिचेरी	०.४९२	१७.१२५	३४.८०७	०.५००	१७.१००	३४.२००	०.५००	१७.१००	३४.२००
२२	अंडमान निकोबार	१.६००	१५.४००	९.६२५	१.६००	१४.९००	९.३१३	१.६००	१४.९००	९.३१३

क्र.	राज्य	वर्ष २००८ - ०९			वर्ष २००९ - १०			वर्ष २०१० - ११		
		क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन	क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन	क्षेत्र ०००हे	उत्पादन ००० मे. टन	उत्पादकता मे. टन
२३	अरूणाचल प्रदेश	५.३००	१५.३००	२.८८७	५.४००	१३.३००	२.४६३	५.४००	१३.३००	२.४६३
२४	पंजाब	०.०००	०.०००	०.०००	०.१००	५.८००	५८.०००	०.२००	११.२००	५६.०००
२५	सिक्किम	०.०००	०.०००	०.०००	१.६००	३.२००	२.०००	१.७००	३.४००	२.०००
२६	हवेली	०.०००	१.२००	०.०००	०.०००	१.२००	०.०००	०.०००	१.२००	०.०००
२७	राजस्थान	०.०००	०.६००	०.०००	०.०००	०.८००	०.०००	०.१००	०.८००	८.०००
२८	हिमाचल प्रदेश	०.१००	०.३००	३.०००	०.१००	०.३००	३.०००	०.१००	०.७००	७.०००
	कुल	७०८.७९२	२६२१७.०२५	३६.९८८	७७०.४००	२६४६९.४००	३४.३५८	७६४.७००	२७०११.६००	३५.३२३

श्रोत - कृषि सांख्यिकी विभाग, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली (२०१२)

४. केला लगाने के लिये महत्वपूर्ण व आवश्यक घटक

४.१. जलवायु:

केला उष्ण कटिबंधीय आर्दतायुक्त क्षेत्र की फसल है, परन्तु उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में भी इसकी अच्छी फसल होती है। उष्ण कटिबंधीय आर्दतायुक्त क्षेत्र की फसल होने के कारण अति ठंड या अति उष्ण तापमान केला फसल के लिये उपयुक्त नहीं है। केले के लिये उष्ण व आर्दता वाला मौसम आवश्यक है, किन्तु तापमान १२°से. से कम व ३८°से. से अधिक नहीं होना चाहिये। साधारणतया नियमित सिंचाई, स्वच्छ सूर्यप्रकाश, खुली हवा व मध्यम आर्दता वाले परिसर में केला का उत्तम उत्पादन प्राप्त होता है।

तापमान १२°से. से कम होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है व पोषकतत्वों के अवशोषण की क्षमता में कमी हो जाती है। पोटाश की उपलब्धता में कमी नजर आने लगती है व उसके कारण नाइट्रोजन, मैग्नीशियम, गंधक, लौह आदि पोषकतत्वों की उपलब्धि पौधों में कम होने लगती है तथा पत्ते पीले होने, शीर्षस्थान पर जलने व पत्तों के एक ही स्थान पर गुच्छा बनने जैसे लक्षण दिखने लगते हैं व पौधों को घुटन होने लगती है। यह कम तापमान होने की वजह से होता है।

तापमान जैसे ही ३८°से ४७°से. तक बढ़ता है उस समय पौधों पर तनाव पड़ता है व पौधों की अधिकतम ऊर्जा तापमान का सामना करने में खर्च होती है। पौंधों के इन्जाईम व हार्मोन की कार्यक्षमता में कमी होने लगती है व पौधे मुरझाने लगते हैं, इसलिये केला फसल की वृद्धि के लिये २५°से ३०°से. तापमान अधिक योग्य है। उन क्षेत्रों में जहाँ तापमान ५°से. से ७°से. होता है वहाँ ठंड में केला के गुच्छे बाहर न आयें इस हिसाब से फसल को लगाने की योजना बनायें। इसके लिये मौसम का ठीक से अध्ययन कर पौधों को लगाया जाना उचित होता है।

विगत अनेक वर्षों के अध्ययन व अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि पुणे, कोल्हापुर, सोलापुर, सांगली, सातारा एवं अहमदनगर जिलों में जलगाँव की तुलना में कम तापमान होने के कारण केले का प्रकार व गुणवत्ता अच्छी होती है।

४.२. भूमि:

जिस जमीन में केला लगाना है उस जमीन की किस्म पर केला का उत्पादन आधारित होता है। जमीन के अनुसार केले की जड़ों का विकास होता है जड़ों की कार्यक्षमता पर पौधों का विकास एवं उत्पादन निर्भर है। केला के लिये जमीन भुरभुरी, अच्छी जल निकास वाली, हल्के से मध्यम प्रकार की उपजाऊ व भरपूर जैविक

खादयुक्त, सामान्यतः ६-७ पी.एच. वाली जमीन उपयुक्त होती है। जमीन की क्षारीयता ०.५ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये। जमीन में जीवाणु व अन्य लाभप्रद सूक्ष्म पोषकतत्वों की योग्य मात्रा होनी चाहिये। अधिक चूनेवाली, जल निकास न होनेवाली या अत्यन्त रेतीली या भारी काली जमीन, इस फसल के लिए अच्छी नहीं होती है।

४.३. केला लगाने के लिए भूमि का चयन व सावधानियाँ:

- खेत रास्ते के पास हो या आने जाने का उचित मार्ग होना चाहिये।
- टिश्यूकल्चर केला लगाने के लिये दलदल वाली जमीन नहीं होना चाहिये।
- खेत के पास कपास, मक्का, हरी सब्ज़िया, चवली, बेलवर्गीय, द्विदल फसल का खेत नहीं होना चाहिये।
- आसपास के खेत में बंची टाप (शीर्ष गुच्छ), सीएमवी जैसे रोग से ग्रसित पौधे नहीं होना चाहिये। ऐसे रोग ग्रस्त बगीचे के पास टिश्यू केला नहीं लगाऐं।
- जिस खेत में केला लगाना हो उसके उपर के खेत में गन्ने की फसल की सिंचाई खुली नाली पद्धति से की गई हो ती नीचे वाले खेत में केला फसल नहीं लगाऐं।
- यदि परिसर में रोगों का प्रकोप अधिक मात्रा में हो वहाँ टिश्यूकल्चर केला नहीं लगाऐं।
- क्षारीय, चिकनी, पथरीली, रेतीली अथवा अत्याधिक कम पी.एच. (अम्लीय) अथवा अत्याधिक कम निथारवाली जमीन में केला नहीं लगाऐं।
- खेत के पास गांव का गंदा पानी, नाली हो तो ऐसे खेत में केला नहीं लगाऐं।
- जहाँ जंगली सुअर, नीलगाय के द्वारा नुकसान की संभावना हो ऐसे खेत में केला नहीं लगाऐं।
- गन्ने की फसल की गई हो उस खेत में केला नहीं लगाऐं।

४.४. केला लगाने के लिए जमीन की तैयारी:

केला पौधों की जड़ें अत्यन्त नाजुक व नरम होती हैं। मुख्य जड़ें पौधों को आधार देने का काम करती हैं व दूसरी तंतुमय जड़ें पोषकतत्वों के अवशोषण का काम करती हैं। केला की जड़ें १२० सेमी. गहराई तक जाती हैं व लगभग २१० सेमी तक आसपास फैलती हैं। यद्यपि केला की जड़ें १२० सेमी. गहराई तक जाती हैं परन्तु कार्यक्षम जड़ें सबसे ऊपर ३० सेंमी. गहराई के भाग में रहती हैं, इसलिये जमीन की गहरी, हल्की जुताई करके २-३ बार बक्खर चला कर व बड़े ढेले होनेपर रोटावेटर चला कर मिट्टी को भुरभुरी करें।

चित्र २ : केला लगाने से पूर्व खेत की तैयारी करना

जिस जमीन में जैविक पदार्थ की कमी हो व जलनिकास कम हो, उस में पहले हरी खाद जैसे ढैंचा आदि लगाकर ४५ दिन बाद उसे जमीन में गाड़ दें। उसके बाद केला लगाएँ। एक हजार पौधों के लिये ५-६ ट्राली गोबर की खाद का उपयोग करें। केले के लिये जमीन अच्छी तपी हुई व खुली होना आवश्यक है। इसलिये मध्यम, हल्की, काली जमीन में जिस दूरी पर केला लगाना हो उसमें दो माह पूर्व से ही पंक्तियाँ बनाने का काम चालू कर दें ताकि जड़ क्षेत्र तक की जमीन अच्छी तरह से सूर्यप्रकाश से गर्म हो जाय।

४.५. क्यारी तैयार करनाः

भारी काली जमीन में केला नहीं लगाएँ। इसका कोई विकल्प न होने पर पूर्व निर्धारित अंतर पर १.५ से २ फिट ऊँचाई की क्यारी बनाएँ व उसमें गोबर की खाद /कम्पोस्ट/ खाद मिट्टीं में मिलाएँ। टपक सिंचाई पद्धति से पौधों की जड़ें क्यारी में

चित्र ३ : ऊँची क्यारी बनाकर ड्रिप नली बिछाना

या नमीवाले क्षेत्र में फैलती हैं। पंक्ति पद्धति में पौधे लगाने पर भी गोबर की खाद पंक्तियों में ही डालें ताकि वह जड़ों के कार्यक्षम क्षेत्र में ही रहे।

४.६. आधुनिक पद्धति से केला लगाने के लिये उपयुक्त किस्म का चयनः

भारत में विभिन्न परिस्थितियों व तरीकों से केला उत्पादन किया जाता है। इसलिये किस्म का चयन मुख्यतया विभिन्न प्रकार की आवश्यकता व परिस्थिति पर निर्भर है। विविध राज्यों में बसराई, रोबस्टा, मोंधन, पूवन, नेंद्रन, लालकेला, न्याली, सफेद वेलची, रस्याली, करपूरवल्ली, करथाली, अर्धपूरी, श्रीमंती और ग्रेंड नैन आदि किस्में लगाते रहे हैं व व्यावसायिक आधार पर केला उत्पादन करनेवाले जिले जलगाँव, धुलिया, नंदुरबार, नांदेड व परभणी में पहले वसराई, श्रीमंती, अर्धपुरी किस्मों को बड़े पैमाने पर लगाते थे।

जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि. ने टिश्युकल्चर केला के पौधों का उत्पादन करने के पूर्व अध्ययन कर निश्चय किया कि जो किस्म निर्यातक्षम हो और जिसकी वैश्विक बाजार में मांग हो, अधिक उत्पादन देती हो तथा कम समय में पकती हो, ऐसी किस्म को लगाया जाए। इस विचार से वर्ष १९९२ में ग्रैन्डनैन, विलियम, विम्केलिगं किस्मों को देश में लाने का कम्पनी ने प्रथम श्रेय प्राप्त किया। इन किस्मों का बसराई, श्रीमंती, रोबस्टा के साथ तीन वर्षो तक तुलनात्मक अध्ययन किया। प्रयोगों के उपरोक्त सर्वोत्तम उत्पादन, गुणवत्ता व आकर्षक रंग वाली व वैश्विक बाजार में प्रचंड मांग वाली ग्रैन्डनैन किस्म का चयन कर इसके टिश्युकल्चर पौधों का उत्पादन कर कृषकों को उपलब्ध कराया गया। आज गैन्डनैन सबसे अच्छे किस्म के रूप में महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं छत्तिसगढ़ के साथ ही सम्पूर्ण देश में लोकप्रिय हो गई है।

४.७. बीज (कन्द व पौधे):

कंदः पारम्परिक पद्धति से तलवार जैसे पत्ते वाले लगभग ५०० से १००० ग्राम वजन के कंद लगाने के लिये उपयोग किये जाते हैं। ये कंद सूत्रकृमि व सभी प्रकार के रोग से ग्रस्त होते हैं। अंकुरित कंदों के आयु व आकार में अंतर होने के कारण फसल भी एक जैसी नहीं होती, कटाई में विलम्ब होता है व फसल प्रबन्धन में काफी अड़चनें आती हैं।

पौधः आधुनिक पद्धति में, टिश्यु कल्चर पौधों को लगाने की अनुशंसा की जाती है। ऐसे पौधे समान आयु के एक जैसे आनुवंशिक गुण-धर्म वाले होते हैं। उपयुक्त पद्धति से द्वितीयक दृढ़ीकृत पौधों को ही लगाने की अनुशंसा की जाती है।

टिश्यूकल्चर पौधों को निर्माण करने की प्रक्रियाः

रोगामुक्त केले का उत्पादन करने का पथ-क्रम निम्नानुसार है।

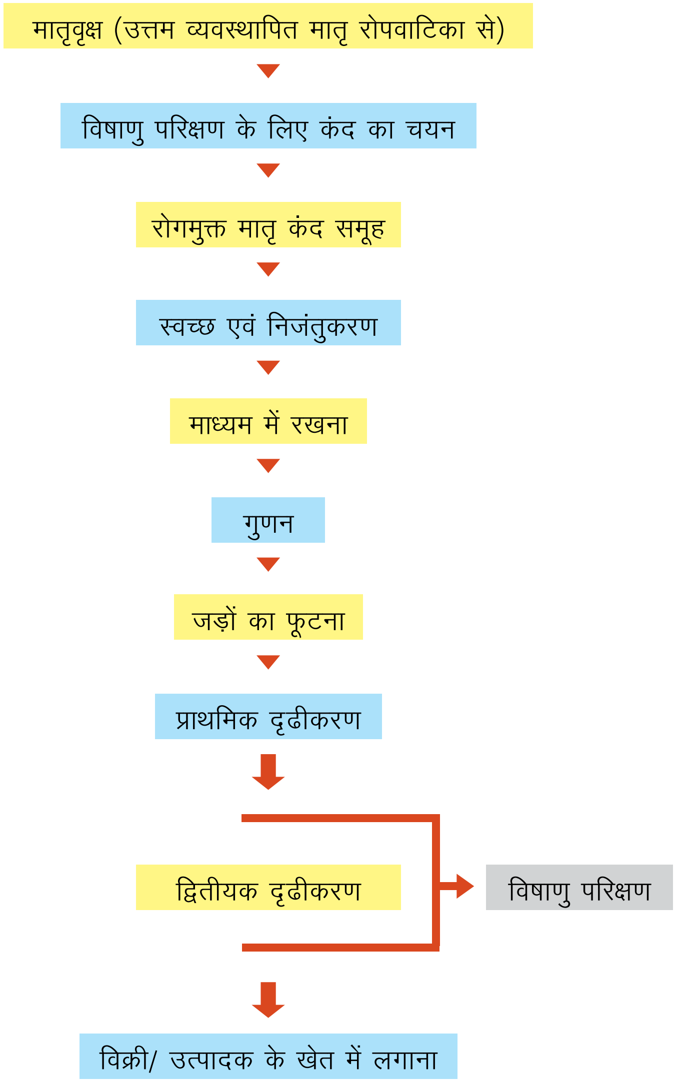

चित्र ४ : टिश्यूकल्चर केला पौधों को तैय्यार करने की प्रक्रिया में विविध अवस्थाएँ दर्शाने वाला चक्र

चित्र ५ : टिश्यूकल्चर केला पौधों का द्वितीयक दृढिकरण अवस्था

तालिका ५ : टिश्यूकल्चर केला व पारम्परिक केला लगाने की तुलना

टिश्युकल्चर केला की फसल	कंद (पारम्परिक) विधि से केला की फसल
१) टिश्युकल्चर पौधे एकसमान आयु व किस्म के होते हैं।	१) सभी कंद एक समान आयु के व एक ही किस्म के होगें, यह निश्चित नहीं।
२) पौधे निरोगी व दमदार होते हैं।	२) कंद, कीट व रोगमुक्त नहीं होते।
३) टिश्यूकल्चर केला पौधों में मातृवृक्ष के सभी गुणधर्म समान होते हैं।	३) कंद से लगाये हुये पौधों में सभी पौधों के गुणधर्म एकसमान नहीं होते हैं।
४) अधिक उत्पादन देनेवाले मातृवृक्ष के समान अधिक उत्पादन सुनिश्चित होता है।	४) विभिन्न प्रकार के कंद होने से अधिक उत्पादन सुनिश्चित नहीं होता हैं।
५) पौधे लगाने के बाद ११ से १२ माह में फसल निकालने के लिये तैयार होती है।	५) कंद लगाने के बाद १५-१६ माह में फसल तैयार होती हैं।
६) फसल की वृद्धि एकसमान होती है।	६) फसल की समान वृद्धि नहीं होती।
७) फसल की कालावधि कम होने से पानी, मजदूरी व अन्तर्वर्तीय कार्य के खर्च में कमी होती है।	७) फसल की कालावधि अधिक होनेपर पानी, मजदूरी व अन्तर्वर्तीय कार्यो में खर्च अधिक होता है।
८) २८ से ३० माह में एक मुख्य फसल व दो पेंड़ी फसल ऐसे तीन फसलें ली जा सकती है।	८) ३० से ३२ माह में एक मुक्ख्य फसल व एक पेंड़ी फसल ऐसे दो फसल ही ली जा सकती है।
९) उत्पादन अधिक, अधिक आर्थिक लाभ। (शर्ते लागू)	९) उत्पादन कम, आर्थिक लाभ कम।

टिश्यूकल्चर केला लगाने से लाभ:

i) मातृवृक्ष के सभी गुण समान रूप से विद्यमान।

ii) कीट व रोग रहित पौधे।

iii) एकसमान वृद्धि व उत्पादन अधिक।

iv) फसल कम समय में, इस कारण भारत जैसे प्रति व्यक्ति कम क्षेत्रीय जमीन वाले देश में इसका अधिक उपयोग।

v) मुख्य फसल के बाद दो बार पेड़ी फसल लिये जाने पर कम समय व कम खर्च में अधिक उत्पादन।

vi) एक समान फूल, गुच्छ एवं कटाई।

vii) ९५ से ९६ प्रतिशत पौधों से फल प्राप्ति।

viii) कम समय में अधिक संख्या में नए पौधों का निर्माण।

४.८. टिश्यूकल्चर पौधों का चयन व आधार:

संत तुकाराम के अनुसार "शुद्ध बीज से फल रसमय व स्वस्थ फल" व ऋगवेद के अनुसार "सुबीजम् सुक्षेत्रे जायते सम्पद्यते" अर्थात अच्छा बीज अच्छी भूमि में लगाने से सम्पदा आती है। यदि हम कम कीमत से आकर्षित होते हैं व पौधों के चयन में गलती करते हैं तब सम्पूर्ण श्रम पर पानी फिर जाता है व अधिक आर्थिक हानि होती है। ऐसे कई उदाहरण महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश एवं गुजरात में हैं। इस कारण से समय, धन व फसल बोने की पूर्ण योजना विफल हो जाती है। इसके साथ ही तकनीक बदनाम होती है। देश के नौ राज्यों मे केले के बगीचों का निरीक्षण करने पर वहाँ के कृषकों की असफलताओं का अनुभव लिया। पौधे निर्माण करनेवाली संस्था ने पौधों की शुद्धता को ठीक से संभाला नहीं या कृषक ने सभी तकनीकी पैकेज को नहीं अपनाया तो उत्पादन कम होकर नुकसान होता है, इसलिये टिश्यूकल्चर पौधे लेते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

i) टिश्यूकल्चर केला पौध तैयार करने के लिये मातृवृक्ष का चयन करना पड़ता है। इसके लिये स्वतंत्र मातृ नर्सरी क्षेत्र होना व उस स्थान पर सभी प्रतिबंधात्मक उपायों को कठोरता से अपनाना आवश्यक है।

ii) उसी मातृ वृक्ष नर्सरी के बगीचे से निरोगी, सशक्त, प्रचलित किस्म के सभी गुणधर्म वाले, समय पर केला गुच्छ देनेवाले व औसतन २५-३० किलो वजन के घड़ों वाले पौधों के कन्दों का उपयोग किया जाना चाहिये।

iii) कंदों का उपयोग करने के पूर्व वाइरस इंडेक्सिंग किया जाना चाहिये। इसके लिये स्वयं की वाइरस इंडेक्सिंग प्रयोगशाला होना चाहिये। उसी प्रकार कंद भी फफूंदजन्य व जीवाणुजन्य रोग रहित होना चाहिये।

iv) उसके बाद उन कंदों को कल्चरिंग के लिये अति आधुनिक प्रयोगशाला में तैयार किया जाना चाहिए। प्रयोगशाला में पौधों का निर्धारित समय में गुणन किया जाना चाहिये।

v) पौधों का प्राथमिक दृढ़ीकरण, नियन्त्रित वातावरण वाले ग्रीनहाऊस में एक विशेष माध्यम में ट्रे में लगाकर कम से कम ४५ दिन किया होना चाहिए।

vi) द्वितीयक दृढीकरण ग्रीन हाऊस में जड़ तैयार हुये पौधे विशेष माध्यम में लगाकर शेड हाउस में कम से कम ४० से ४५ दिन तक द्वितीय दृढ़ीकृत किये हुए होना चाहिये।

vii) पौधे ४ से ५ पत्तोंवाले व कम से कम ६ इंच ऊँचाईवाले व पूर्ण रूप से तीन माह तक दृढ़ीकरण किये गये सक्षम पौधों को ही लगाने के लिये उपयोग करें।

vii) पौधों के परिवहन के लिये विशेष प्रकार की व्यवस्थायुक्त वाहन का उपयोग किया जाना चाहिये।

४.९. रोपाई का समय:

टिश्युकल्चर पद्धति से तैयार पौध की रोपाई अति उष्ण व अति शीत कालावधि को छोड़कर वर्ष भर की जा सकती है, परन्तु बाजार भाव का विगत तीन वर्षो का अध्ययन करके पौधे लगाने का समय निश्चित करना अधिक लाभदायक होता है। उन क्षेत्रों में जहाँ बारिश २००० मि. मी तक होती है, बरसात के मौसम के बाद पौध लगाना चाहिये। पौध रोपण के लिये मौसम पर ध्यान देना चाहिए। अति उष्णता से पौधे मरते हैं और बहुत अधिक ठंडी जलवायु वाले मौसम में पौधो की वृद्धि नहीं होती। उसी प्रकार पौधों की वृद्धि अवस्था व फल बननेवाली अवस्था अति उष्ण अथवा बहुत ढंडे वाले समय में नही आए, इस अंदाज से पौधों को लगाएँ। मृग बाग की रोपाई में उपयुक्त व पोषक वातावरण मिलने से उत्पादन अधिक प्राप्त होता है तथा कान्दे बाग रोपाई के समय शुरू में थोड़ी ठंड और बाद में उष्णता बढ़ने से उत्पादन कम मिलता है परंतु पश्चिम महाराष्ट्र के पुणे को छोड़कर अन्य सभी जिलों में कांदे बाग व राम बाग के मौसम में पौधे लगाने पर भरपूर उत्पादन प्राप्त होने के अनेक उदाहरण हैं।

तालिका ६ : कटाई के समयानुसार पौध रोपण का प्रबन्धन

अ.क्र.	पौध रोपाई का मौसम	पौध लगाने का समय	केला फूल बाहर निकलने का समय	केला कटाई का समय
१.	मृग बाग	जून-जुलाई	जनवरी-फरवरी-मार्च	अप्रैल-मई-जून
२.	कांदे बाग	अक्तूबर-नवम्बर	मई-जून-जुलाई	अगस्त-सितम्बर-अक्टूबर
३.	रामबाग	मार्च-अप्रैल	अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर	जनवरी-फरवरी-मार्च

उन क्षेत्रों में जहाँ मध्यम प्रकार का मौसम अर्थात तापमान १५°से. से कम व ४०°से. से अधिक नहीं जाता हो ऐसे क्षेत्रों मे वर्ष भर कभी भी केला लगाया जा सकता है। टिश्युकल्चर पौध वाली खेती की देखभाल उत्तम प्रकार से करने पर ११ माह में फसल की पूर्ण कटाई हो जाती है ऐसा जैन संशोधन व विकास व अनेक कृषकों के खेतों पर अनुभव किया गया है।

४.१०. केला लगाने की दूरी:

हम सर्वप्रथम उष्ण तापमान व शुष्क तापमान यानी कम आर्द्रतावाले जलगाँव, नंदुरबार, धुलिया, नांदेड, परभणी, अकोला, अमरावती, बुलढाणा, बुरहानपुर जिलों पर विचार करें। इन जिलों में पौध लगाने की दूरी ६x५ फीट होनी चाहिये व उन

भागों में जहाँ तापमान ४२°-४३°से. से अधिक नहीं जाता है व आर्द्रता अधिक होती है तथा कभी कभी तापमान ७°से. से कम हो जाता है जैसे पुणे, सातारा, सोलापुर, अहमदनगर, कोल्हापुर जिलों व कोंकण क्षेत्र में पौधों की दूरी ८x५ फिट या ७x५ फिट होना चाहिये। अर्थात दो पक्तियों के बीच की दूरी ८ या ७ फिट व दो पौधो के बीच की दूरी ५ फिट होना चाहिये। गोवा, ठाणे, रत्नागिरी, सूरत व सम्पूर्ण कोंकण प्रदेश में अंतर ७x५ फिट से कम नहीं होना चाहिये।

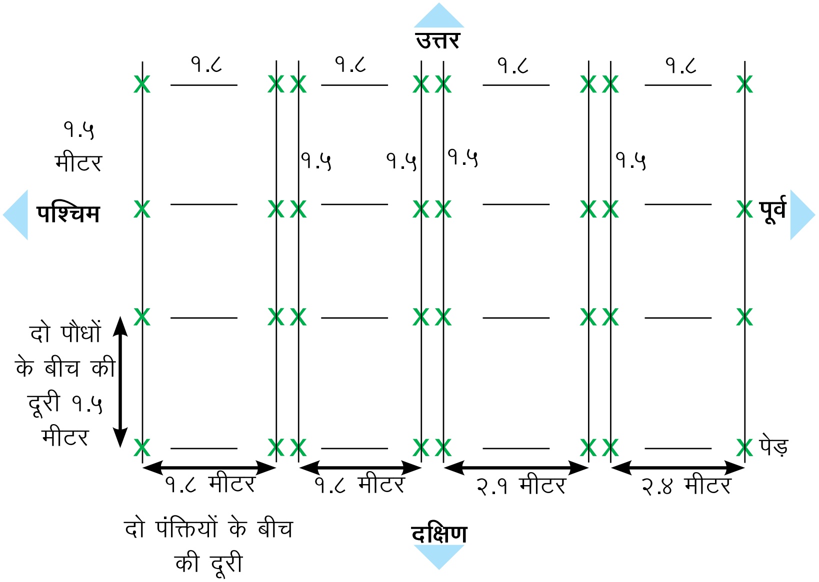

चित्र ६ : केला लगाने की उचित पद्धति

४.११. जैन टिश्यूकल्चर केला पौध उतारते व पौध रोपाई करते समय रखी जानेवाली सावधानियाँ।

i) पौधों की गाड़ी खेत पर आने के बाद उन्हें किसान स्वयं गिनती कर उतरवाएँ।

ii) पौधे स्वच्छ स्थान पर छाँव में या शेड नेट के नीचे अच्छी तरह जमाएँ व ४-५ दिन रखें। बरसात के मौसम में बादली वातावरण या सौम्य तापमान होने पर तुरंत रोपाई करें।

iii) पौधों को अत्यन्त अंधेरे या अधिक तेज सूर्यप्रकाश में या अधिक घना न रखें।

iv) पौधों को सुबह, दोपहर एवं शाम के समय फौव्वारा से पानी दें। अधिक पानी न दें।

v) पौध आने के बाद अगले दिन ही रोपाई करने पर निम्नानुसार छिड़काव करें।

(अ) स्ट्रेप्टोसायक्लिन या बैक्टेरीमाइसिन	- १० ग्राम	}	१५ लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
+ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड	- ३० ग्राम		
+ क्लोरोपायरीफॉस	- ३० मि.लि.		
+ स्टिकर	- २० मि.लि.		

(ब) पौध लगाने के पूर्व व लगाने के बाद

+ १९:१९:१९	- २० ग्राम	}	१५ लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
+ सूक्ष्म पोषकतत्व	- २० मि.लि.		
+ प्लॅन्टोझाईम	- २० मि.लि.		
+ स्टिकर	- २० मि.लि.		

पौध लगाने के समय रखी जानेवाली सावधानियाँ:

i) पौध लगाने के पहले फौव्वारा से पानी दें।

ii) पौधे थैली में हो तो थैली को हाथ में रख कर ब्लेड से काटें व पौधों के जड़ के साथ वाली मिट्टी के गोले फूटे नहीं इसकी सावधानी रखें। पौधे कप में हो तो चारों ओर से कप को उंगली से दबाएँ व कप के नीचे के छिद्र में उंगली से पौधों को ऊपर ढकेलें व दूसरे हाथ से पौधे को बाहर खींचें।

iii) जल निकास न होने वाली चिकनी काली, अत्यंत रेतीली, भारी काली व पानी पकड़ने वाली जमीन में केला रोपाई नहीं करें।

iv) भारी काली व कम जल निकास वाली जमीन में गहरी लाइन नहीं बनायें। ऐसी जमीन में ऊँची क्यारियों में रोपाई करना सबसे अच्छा होता है।

v) पौधे लगाने के पूर्व जैन टपक सिंचाई संयन्त्र की स्थापना पूरी कर उसे १० से १२ घंटे चला कर जमीन को पूरा गीला करें व वायुसंचारित अवस्था में आने पर रोपाई करें।

vi) पौधे लगाने के बाद खरपतवार नाशक का उपयोग नहीं करें।

vii) पौधों को मीड़िया के गोले सहित कतार में या गड्ढे में रखें एवं उसके आसपास दस ग्राम फोरेट डालें।

viii) वातावरण अच्छा हो एवं पौधे भीगे न हों, तभी सुपर फॉस्फेट, पोटाश व नीम की खली जैसी खाद खेत में दें।

ix) पौधों के चारों ओर थोड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद दें व मिट्टी चढ़ाएँ एवं जड़ों के आसपास आवश्यकता से अधिक हल्का पन नहीं रहे इस हिसाब से मिट्टी दबाएँ।

x) तुरन्त टपक सिंचन पद्धति चला कर पानी दें। जमीन हमेशा वायु संचारित स्थिति में रखें।

xi) पौधों को पानी, जमीन के प्रकार, पौधों की वृद्धि की अवस्था व जमीन की वायु संचारित स्थिति देखकर ही दें। आवश्यकता/सिफारिश से अधिक या बहुत कम पानी नहीं दिया जाय इसका ध्यान रखें।.

xii) पौध लगाने के बाद कई बार इर्विनिया रॉट या हेडरॉट रोग होने की संभावना रहती है। इसके लिये पौध लगाने के एक सप्ताह बाद २०० लिटर पानी में ४ किलो ब्लीचिंग पाउडर, अथवा ३० ग्राम स्ट्रेप्टोसायक्लिन, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड ६०० ग्राम व क्लोरोपायरीफॉस ६०० मि. लि. मिला कर घोल बनाएँ एवं प्रत्येक पौधे के पास इस घोल की ड्रेन्चिंग करें।

xiii) ड्रेन्चिंग के बाद दो दिन पानी नहीं दें।

xiv) ब्लिचिंग पावडर डालते समय हाथ में दस्ताना (हैन्ड ग्लोब्स) पहनें।

xv) पौंध लगाने के ८ दिन बाद सिफारिश के अनुसार फर्टिगेशन शुरू करें।

xvi) उष्ण वातावरण में पौध लगाने के एक माह पहले पश्चिम व दक्षिण की तरफ बगल में सनई लगाएँ व उसकी छाया में केला की पौध लगायें।.

xvii) गर्मी में पौध लगाते समय केला के साथ सनई या ढैंचा की बुवाई करें।

xviii) इस तरीके से उष्ण तापमान में भी आप केला फसल सफलता पूर्वक ले सकते हैं।

xix) गर्मी में पौध लगाने से पौधों पर प्रखर उष्णता का धक्का लगता है एवं इससे पौधे मरने लगते हैं। ऐसी स्थिति में सिमेंट की खाली बोरियों को साफ पानी से धोकर उसकी छाया पौधों पर की जा सकती है। एक बार पौधे जब बढ़ने लगें तो छाया हटा दें।

चित्र ७ : गर्मी में पौध लगाने की दशाम में केला पौध को छाया देना।

४.१२. जल प्रबन्धनः

पानी एवं पोषक तत्व, फसल उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक घटक हैं। टपक सिंचाई पद्धति से पानी एवं घुलनशील खादें दोनों ही अच्छी तरह से दी जाती हैं। इसके लिये पीवीसी पाइप को मुख्य वाहिनी, फिल्टर, कन्ट्रोल वॉल्व, पीवीसी उपमुख्य वाहिनी व एलएलडीपीई नली का उपयोग होता है।

केला के लिये टपक सिंचन यंत्र की स्थापनाः

केला की ६० प्रतिशत जड़ें जमीन के ऊपर ३० से.मी. की गहराई में होती हैं। अत्यन्त नरम, नाजुक एवं ढीली होने से जमीन की ऊपरी सतह के पृष्ठभाग में वायुसंचारण स्थिति वाली नमी लगातार बनाये रखना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक कतार में एक पद्धति से कतारों की दूरी के अनुरूप उदाहरणार्थ ६ फिट, ७ फिट या ८ फिट की दूरी पर नली बिछाएँ। नली पर भारी जमीन के लिये प्रत्येक ६० सेमी की दूरी पर ४ लिटर प्रति घंटा प्रवाह क्षमता के ड्रिपर लगाएँ। पानी में क्षार न हो, कुएँ या ट्यूबवेल से पानी ले रहे हों तो जे-टर्बोलाईन सिस्टम का उपयोग करने से केला का बगीचा अच्छा होता है। संयन्त्र में आवश्यकनुसार सभी फिल्टर्स लगाएँ। इसी प्रकार फर्टिगेशन के लिये वेंचुरी या १२० लिटर/१६० लिटर क्षमता की फर्टिलाइजर टंकी लगाएँ एवं पौधों की पूर्ण कतार गीली रहे इस हिसाब से पानी दें। मौसम के अनुरूप पानी की मात्रा में बदलाव हो सकता है वैसे ही जमीन के अनुसार भी पानी की मात्रा में बदलाव हो सकता है। काली जमीन में कम व सफेद, पीली, चूनायुक्त व पथरीली जमीन में आवश्यकता से अधिक पानी देना पड़ता है। केला की पूर्ण विकसित पौधों की औसतन पानी की आवश्यकता २० से २५ लिटर प्रतिदिन हो सकती है।

जैन ड्रिप - संपूर्ण सिंचन प्रणाली

चित्र. ८ : टपक सिंचाई यंत्र प्रणाली का प्रतिनिधिक चित्र

जैन ड्रिप सिंचाई पद्धति से लाभः

जैन ड्रिप पद्धति इस प्रकार से बनाई जाती हैं कि इसका उपयोग सहजता से किया जा सके, उच्चत्तम उपयोग क्षमता रहे और कम से कम कठिनाई हो। इस पद्धति के महत्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं जिनके कारण जैन ड्रिप पद्धति देश भर के हजारों कृषकों की विश्वसनीय पद्धति है।

i) **उत्पादन में वृद्धिः** निर्धारित कालान्तर से पानी देना इस पद्धति से सम्भव होने से दीर्घ काल तक जड़ क्षेत्र में आवश्यकतानुसार नमी रखी जाती हैं, इसलिये पौधों पर तनाव नहीं पड़ता एवं उत्पादन वृद्धि के साथ उत्पाद की गुणवत्ता उत्तम होती है। लगभग सभी फसलों में टपक सिंचाई के अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं व उत्पादन में १०० प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। इसके अलावा फसल शीघ्र तैयार होती है। एक साधारण रुप में उत्पादन में ३०-३५ प्रतिशत तक वृद्धि पाई गई है।

ii) **पानी की बचतः** पानी के जमीन में प्रवेश करते समय एवं वाष्पीकरण तथा परिवहन में व्यर्थ बहने से होने वाले नुकसान में उचित प्रबंधन से पानी की ७० प्रतिशत तक बचत हुई है।

iii) **खरपतवार नाशक के खर्च में बचतः** सीधे जड़क्षेत्र में पानी दिये जाने से मिट्टी का छोटा सा भाग ही गीला होता है। पौधे से पौधे व कतार से कतार की बीच की जगह गीली नहीं होती। इस कारण से खरपतवार को पानी और खाद नहीं मिलती एवं उसकी वृद्धि नियंत्रित रहती है। इससे पानी में भी बचत होती है व खरपतवार निकालने के खर्च में भी बचत होती है। जैन टपक सिंचाई पद्धतिद्वारा पानी में घुलनशील खाद एवं पौध संरक्षक रासायनिक दवाएँ पानी के साथ दिए जा सकते हैं।

iv) **कीट एवं रोग प्रबन्धनः** टपक सिंचाई पद्धति से कीट एवं रोग प्रबन्धन आसानी से किया जा सकता है। इस पद्धति द्वारा मिट्टी की उर्वरता व रासायनिक मिश्रण का स्तर सही ढंग से नियन्त्रिण होता है। इसके अलावा जमीन में खुले पानी देने से फैलने वाले रोग का भी प्रबन्धन होता है।

v) **ऊँची नीची तथा दूषित जमीन में खेती करने में आसानीः** ऊंची नीची जमीन को बिना समतल किये हुए उसमें आसानी से टपक सिंचाई की सहायता से नमी लायी जा सकती है।

केला लगाने के पहले अपने पास उपलब्ध पानी का ध्यान रखते हुये इसका नियोजन करें। केला के अच्छे व भरपूर उत्पादन के लिये आवश्यकतानुसार पानी प्रतिदिन सही समय पर देना चाहिये। एक अमेरिकन लेखक ने लिखा है कि केला

की जड़ें पानी रोकने में कमजोर होती हैं इसलिये जमीन को वायु संचारित स्थिति में रखते हुये प्रतिदिन पानी देना आवश्यक है। पानी कितना और कब दें यह मौसम पर निर्भर है। जलगाँव जैसे क्षेत्र में जहाँ तापमान ४८°से. तक जाता है, पानी की मात्रा, कोल्हापुर की तुलना में अधिक लगती है। केले के पत्ते अधिक चौड़े होते हैं व एक पौधे के पत्तों का आच्छादित क्षेत्रफल लगभग ५० से ६० वर्ग मीटर तक होता है। इस कारण से पानी का उत्सर्जन अधिक मात्रा में होता है व केले के लिये अधिक पानी की आवश्यकता होती है। परन्तु इसका हम सुविधाजनक मतलब निकालते हुये गन्ने जैसा खुला पानी यदि देते हैं तो इससे केला उत्पादन में कमी होती है, जड़ें सड़ने लगती हैं या हेडरॉट जैसे रोग होने लगते हैं, इसलिये टिश्युकल्चर पद्धति से केला उत्पादन में केवल टपक सिंचाई पद्धति का ही प्रयोग करें।

- टिश्यूकल्चर केला के पौधों पर छोटी सी गांठ होती है व उस पर ८-१० जड़ें होती हैं जड़ें फूटने के लिये कम जगह होती है फिर भी जड़ों की मूल परिधि बड़ी होती है।
- टिश्यूकल्चर पौधों में कोई पोषकतत्व नहीं होता। कंद के पास में पोषकतत्व भंडारित रहता है; इसलिये पौधे लगाने के तुरन्त बाद टपक सिंचाई पद्धति से पानी में घुलनशील खाद देना आवश्यक होता है।
- कन्द में पहले जड़ें निकलती हैं, बाद में पत्ते निकलते हैं। टिश्यूकल्चर पौधों में शुरु में ४-५ पत्ते ही निकलते हैं व बाद में जड़ें स्थिर होती हैं। इस समय संतुलित पानी पौधों को यदि नहीं मिला तो जड़ें सूखने लगेगीं व पौधे मर सकते हैं।
- टिश्यूकल्चर केला की खेती में खुले पानी देने की पद्धति से सिंचाई नहीं करें क्योंकि इससे जमीन गीली रहेगी व बहुत अधिक नमी होने से जड़ों को हवा नहीं मिलेगी। परिणामतः जड़ें, पोषकतत्व, जमीन, पौधे व पानी का संतुलन नहीं रहता व पौध पोषकतत्व ग्रहण नहीं कर पाते हैं। कर्नाटक में कोप्पल, छत्तीसगढ़ में रायपुर व पश्चिम महाराष्ट्र परिसर में खुला पानी देने से उत्पादन कम प्राप्त होने के उदाहरण हैं।
- टपक सिंचाई से साधारणतः पानी की ४५ से ५०% तक बचत व उत्पादन में ५० से ६०% की वृद्धि होती है।
- टपक सिंचाई से उर्वरक का कार्यक्षम उपयोग होता है।
- इस सिंचाई पद्धति से निर्यातक्षम केले का उत्पादन होता है।
- जैन इनलाईन टपक सिंचन पद्धति द्वारा कतार में एक सी नमी निर्मित होने से उष्ण तापमान से संरक्षण होता है व आर्द्रता बनी रहती है।
- गर्मी में टपक सिंचन पद्धति से बगीचे में माइक्रोक्लायमेट का निर्माण होता है।
- बिजली की कमी की समस्या भी टपक सिंचन से दूर होती हैं।
- टपक सिंचन से जमीन क्षारीय होने से बचती है।

तालिका ७ : केला फसल की पानी की आवश्यकता के बारे में ज्ञात करना

फसल की अवस्था	फसल गुणांक (मि.मी.)	फसल विस्तार गुणांक (मि.मी.)
बाल्यावस्था	०.४ - ०.५	०.४
महत्वपूर्ण वृद्धि की अवस्था	०.७ - ०.८५	०.६
गुच्छों की वृद्धि की अवस्था	१.० - १.१	१.०
फलों की परिपक्वता अवस्था	१.० - १.१	१.०
केला निकालने की अवस्था	०.९ - १.०	०.९

पानी की आवश्यकता व सिंचाई का समयचक्र

वाष्पीकरण की गति, जमीन के प्रकार, लगाने का मौसम, वृद्धि की अवस्था व स्थानीय परिस्थिति पर केला फसल के लिये आवश्यक पानी की मात्रा निर्भर करती है।

केला फसल की टपक सिंचाई पद्धति से पानी की आवश्यकता (जलगाँव के लिये)

अ - वाष्पीकरण मि. मि. पात्र x गुणांक (८.५ मि.मी.)
ब - फसल गुणांक (१.१ मि.मी.)
स - फसल वृद्धि/ विस्तार का गुणांक (१.० मि.मी.)
द - केले की दो पंक्तियों में बीच की दूरी x दो पौधों के बीच की दूरी (१.५४ x १.५४ मीटर)
इ - सिंचन पद्धति की कार्यक्षमता (०.९)

केला की पानी की आवश्यकता (लि./ दिवस / पौधा)

$$= \frac{\text{अ X ब X स X द}}{\text{इ}}$$

$$= \frac{\text{१० X ०.८५ X १.१ X १.० X (१.५४ X १.५४ मी.)}}{\text{०.९}}$$

$$= \frac{\text{२२.१७}}{\text{०.९}}$$

= २४.६३ लिटर/दिन/पौधा

तालिका ८ : पानी की आवश्यकता (लिटर/दिन/पौधा)

माह	पानी की आवश्यकता (लिटर/दिन/पौधा)		माह	पानी की आवश्यकता (लिटर/दिन/पौधा)	
	खरीफ	रबी		खरीफ	रबी
जून	५ - ६	१२ - १४	दिसम्बर	८ - १०	४ - ६
जुलाई	४ - ५	१२ - १४	जनवरी	१० - १२	५ - ७
अगस्त	५ - ६	१२ - १४	फरवरी	१२ - १४	८ - १०
सितम्बर	६ - ८	१४ - १६	मार्च	१६ - १८	१० - १२
अक्टूबर	१० - १२	४ - ६	अप्रैल	२० - २२	१६ - १८
नवम्बर	८ - १०	४ - ६	मई	२५ - ३०	१८ - २०

नोट : पानी की उपर्युक्त मात्रा केवल मार्गदर्शक है। जमीन के प्रकार व मौसम के अनुसार इसमें परिवर्तन करें।

४.१३. पोषकतत्व प्रबन्धन

केला फसल के भरपूर उत्पादन के लिये उर्वरकों की संतुलित मात्रा देना अति महत्वपूर्ण है। टिश्यूकल्चर ग्रैन्डनैन अधिक उत्पादन देने वाली व कम अवधि में तैयार होनेवाली किस्म है, अतः प्राथमिक, द्वितीयक व सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की संतुलित मात्रा देना अति महत्वपूर्ण है। इनका संतुलित मात्रा में उपयोग करने से सुनिश्चित अधिक उत्पादन मिलता है। केला फसल के लिये प्रमुखतया अधिक पोटाश, मध्यम नाइट्रोजन व कम मात्रा में फॉस्फोरस की जरूरत होती है। इसी प्रकार से केल्शियम, मैग्निशियम व सल्फर द्वितीयक पोषकतत्त्वों का व बोरॉन, जिंक, लौह, मैंग्नीज व कॉपर सूक्ष्म पोषक तत्त्वों का संतुलित उपयोग जरूरी है। केला उत्पादन का सीधा सम्बन्ध उर्वरकों के उपयोग से है। वृद्धि की अवस्था के अनुसार उर्वरकों की आवश्यकता विभिन्न मात्राओं में होती है।

i) **बाल्यावस्था (शुरू के दो माह):** इस अवस्था में फॉस्फोरस की अधिक व नाइट्रोजन और पोटाश की मध्यम मात्रा लगती है।

ii) **मुख्य वृद्धि की अवस्था (३ से ५ माह):** इस अवस्था में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन, मध्यम मात्रा मे फॉस्फोरस व पोटाश की जरूरत होती है।

iii) **केला फूल बाहर निकलने व फलवृद्धि (६ से १० माह):**

इस अवस्था में कम मात्रा में नाइट्रोजन, अधिक मात्रा में पोटाश पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है।

तालिका ९ : विभिन्न उर्वरकों की कमी से फसल पर दिखने वाले लक्षण

अ.नं.	पोषक तत्त्व	लक्षण दिखाने वाले पत्तो की अवस्था	पत्तों पर लक्षण	अन्य लक्षण
१)	नाइट्रोजन	पुराने पत्तों पर	पत्ते एकसमान हल्के पीले होने लगते है।	पत्तों के डंठल का लाल होना व सिरों का झुकना।
२)	फास्फोरस	पुराने पत्तों पर	आरी के दातों के समान पत्तों के किनारे होना। (क्लोरोसिस)	पत्तों के डंठल का टूटना व नये पत्तों का गहरा हरा होना।
३)	पोटाश	पुराने पत्तों पर	पत्तों के किनारे पर गहरे पीले रंग की लकीरें होकर मुरझाना	पत्ते मुड़ कर गिरने लगते हैं व पत्तों के सिरे मुड़ कर तोते के चोच के समान दिखते हैं।
४)	कैल्शियम	नये पत्तों पर	पत्तों के किनारे सूखने लगना	पत्तों के ऊपर वाला भाग मोटा होकर किनारे से अन्दर की तरफ सूखने लगना।
५)	मैग्नीशियम	पुराने पत्तों पर	पत्तों का मध्यभाग पीला व किनारे पर हरा होना	अमर्यादित क्लोरोसिस होना व पेड़ों पर भी निशान दिखाई पड़ना
६)	सल्फर	नये पत्तों पर	पत्तों का मुख्य शिरा सहित हल्के हरे व पीले होना।	द्वितीयक नसों का मोटा होना।
७)	बोरॉन	नये पत्तों पर	पत्तों के ऊपर वाले भाग पर पीली रेखायें दिखना	नई पत्तियाँ मुड़ जाती हैं
८)	जिंक (जस्ता)	नये पत्तों पर	नसों के सामानान्तर पीली रेखायें दिखना	नये पत्तों के पीछे वाले भाग में लालपन दिखना
९)	आइरन (लोह)	नये पत्तों पर	सभी नये पत्तों का पीला या पूर्ण सफेद होना	-
१०)	मैग्नीज	नये पत्तों पर	पत्तों पर मिट्टी जैसा रंग ओर पीला हरा रंग दिखना	-

अ.नं.	पोषक तत्त्व	लक्षण दिखाने वाले पत्तो की अवस्था	पत्तों पर लक्षण	अन्य लक्षण
११)	कॉपर (तांबा)	नये पत्तों पर	पत्तों की मुख्य शिरा नीचे की ओर टेढ़ी हुई दिखना	-

शेष सूक्ष्म पोषकतत्वों की कमी के विशेष परिणाम केला फसल पर दृष्टिगत नहीं होते हैं।

वेंचुरी :

यह संयन्त्र वेंचुरी सिद्धान्त पर कार्य करती है। वेंचुरी से हवा आकुंचन टूटते हुये मुख्य पाइप लाइन के पानी का कुछ प्रवाह दूसरी ओर मोड़ते हुये वेक्यूम तैयार किया जाता है। इससे दाब में कमी होकर पानी की गति बढ़ जाती है। इस प्रकार से निर्मित वैक्युम से सक्शन पाईप के द्वारा खाद की टंकी से रासायनिक खाद मिश्रण खींची जाती हैं। वेन्चुरी आसानी से चलाई जा सकती है यह पद्धति कम खेती करनेवाले कृषकों के लिये सुविधाजनक है। वेन्चुरी के उपयोग से सिंचाई पद्धति में दाब की बड़ी मात्रा में कमी होती है इस वजह से समान वितरण की संभावना होती है। वेंचुरी की जलशोषण शक्ति ३० से १२० लिटर प्रति घंटा होती है।

चित्र. ९ : वेंचुरी

खाद देने की टंकी (फर्टिलाइजर टैंक):

इस संयन्त्र में सिंचाई के लिये दिये जानेवाले पानी का एक भाग मुख्य जलवाहिनी से डालकर रासायनिक खाद से भरी हुई टंकी में छोड़ा जाता है। इस प्रकार से डाला हुआ पानी टंकी से गुजरता है और अपने साथ टंकी में से खाद मिश्रण लेते हुये जोड़ी हुई मुख्य वाहिनी में वापस आ जाता है। मुख्य जल वाहिनी से पानी टंकी में मोड़ने के लिये व दाब निर्माण करने के लिये खाद टंकी के अन्दर व बाहर जाने के मार्ग में वॉल्व लगा होता है। खाद टंकियाँ मुख्यतया बड़े सिंचाई संयन्त्रों और या जिन फसलों को खाद की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है वहाँ उपयोग की जा सकती हैं। हांलाकि इस संयन्त्र से पानी में प्रवेश करनेवाले खाद की सघनता समय के साथ बदलती रहती है। शुरू में सघनता अधिक होती है फलस्वरूप खाद वितरण में समानता प्राप्त करना एक समस्या होती है। खाद की टंकी ९०,१२० और १६० लिटर क्षमता में उपलब्ध हैः

चित्र. १० : फर्टीगेशन टैंक

खाद इंजेक्टर पम्पः

यह पिस्टन अथवा डायफ्राम युक्त पम्प होते हैं व सिंचन पद्धति के पानी के दाब पर चलते हैं। दाब में कमी ज्यादा न होने से खाद खींचनेवाली नली में वेग पर अच्छा नियन्त्रण करते हुए सही मात्रा में खाद / रासायनिक पदार्थ आसानी से दी जा सकती है। इस पम्प की अवशोषण क्षमता ४० से १६० लिटर प्रतिघंटा तक होती है।

चित्र. ११ : इंजेक्टर पम्प

जैन न्युट्रीकेयर :

चित्र. १२ः जैन न्युट्रीकेयर (खाद देने का स्वचालित यंत्र)

i) पानी और खाद पाइपलाइन में ही मिश्रित होकर जाते हैं।

ii) खादें ई.सी. और पी.एच. मान के अनुसार मेनलाइन से छोड़ी जाती हैं।

iii) इस पद्धति का स्थापन करना सबसे आसान है। १ से ४ इंच पाइप लाइन पर आसानी से समाविष्ट किया जाता है।

केला के लिये पोषकतत्वों की मात्रा

साधारणतया एक टन केला उत्पादन करने के लिये ४ से ६ किलो नाइट्रोजन, १.५ से २ किलो फॉस्फोरस व १८ से २० किलो पोटाश वातावरण व जमीन की किस्म के अनुसार देने की आवश्यकता होती है। साधारण रूप में केले के लिये पोषकतत्वों की प्रचलित पद्धति प्रति पौधा के आधार पर होने के कारण जैन हिल्स व विश्व में हुए संशोधन के आधार पर जैन टिश्यूकल्चर केला के लिये २१० ग्राम नाइट्रोजन, ७० ग्राम फॉस्फोरस व ४०० ग्राम पोटाश प्रति पौधा दिये जाने की सिफारिश की गई है।

पारंपरिक पद्धतिः

बरसात के मौसम में पौधों को टपक सिंचाई से पानी देने की आवश्यकता नहीं होने के कारण अधिक दिनों के अंतर से पानी दिया जाता है व टपक सिंचाई से खाद देना संभ्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पारम्परिक पद्धति में ठोस खाद की मात्रा निम्नानुसार दें।

नोट : टपक सिंचाई से खाद देने के लिये पारम्परिक पद्धति से अघुलनशील खाद देना बंद करें।

तालिका १० : पारम्परिक खाद के प्रयोग का समय एवं मात्रा

खाद देने का समय	खाद का नाम/श्रेणी	कुल खाद की मात्रा प्रति हजार पौधा (किलो)	खाद की मात्रा प्रति पौधा (ग्राम)
पौधा लगाते समय	सिंगल सुपर फॉस्फेट पोटाश	११० ५०	११० ५०
पौधा लगाने के १० दिन बाद	युरिया	२५	२५
३० वे दिन	युरिया सिंगल सुपर फॉस्फेट पोटाश जिप्सम सल्फर	५० ११० ५० ५०० १०	५० ११० ५० ५०० १०
६० वे दिन	युरिया सिंगल सुपर फॉस्फेट पोटाश मैग्निशियम सल्फेट	६५ ११० ५० १५	६५ ११० ५० १५
९० वे दिन	युरिया सिंगल सुपर फॉस्फेट पोटाश मैग्निशियम सल्फेट सल्फर जिंक लोह बोरॉन	६५ ११० ५५ १५ १० १० १० २	६५ ११० ५५ १५ १० १० १० २
१२० वे दिन	युरिया पोटाश मैग्निशियम सल्फेट	६५ ६० १५	६५ ६० १५
१५० वे दिन	युरिया पोटाश	६५ ६०	६५ ६०
१८० वे दिन २१० वे दिन २५० वे दिन २७० वे दिन ३०० वे दिन	युरिया पोटाश	१२५ ३२५	२५ ६५

नोटः उपरोक्त मात्रा केवल मार्गदर्शन के लिये है। मिट्टी परिक्षण रिपोर्ट व प्रत्यक्ष/अनुभव के अनुसार इसमें बदलाव करें।

द्वितीयक पोषकतत्त्वों का प्रबन्धन : केले के लिये बड़ी मात्रा में कैल्शियम, मैग्नीशियम व सल्फर की आवश्यकता होती है। कैल्शियम की जरुरत पूर्ण करने के लिये काली जमीन में प्रति माह एक किलो जिप्सम तीसरे या चौथे माह मे दें। तीन से पाँच माह तक प्रति माह ५० ग्राम मैग्नीशियम, सल्फेट दे और २० ग्राम सल्फर प्रति माह तीसरे या पांचवे माह से दें। जिप्सम का उपयोग किये जाने पर सल्फर की आवश्यकता नहीं होती।

सूक्ष्म पोषकतत्त्वों का प्रबन्धन : केला फसल के लिये सभी सूक्ष्म पोषकतत्त्वों की कम/अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। मुख्य व सूक्ष्म पोषकतत्त्वों की कमी से उत्पादन कम होता है व पौधों व फलों की गुणवत्ता भी कम होती है। तीसरे या पांचवे माह में सूक्ष्म पोषकतत्त्व फसल को दें। जिंक सल्फेट १० ग्राम, लौह १० ग्राम, बोरान २ ग्राम, कॉपरसल्फेट १० ग्राम व सूक्ष्म पोषकतत्त्वों का मिश्रण २५ ग्राम प्रतिमाह देना आवश्यक होता है।

तालिका ११ : सूक्ष्म पोषक तत्व की मात्रा

ग्रेड	पोषकतत्व की मात्रा प्रति पौधा (ग्राम)
सूक्ष्म पोषकतत्व	१०
फेरस सल्फेट	१०
जिन्क सल्फेट	१०
बोरैक्स	०४
सल्फर	१०

फर्टिगेशन:

टपक सिंचाई द्वारा घुलनशील खाद देने की व्यवस्था को फर्टिगेशन कहा जाता है। टिश्युकल्चर केला लगाने की आधुनिक पध्दति होने के कारण इसमें सभी आधुनिक तत्वों को संयोजन मे देना आवश्यक हो गया है। टिश्युकल्चर केला के पौधों के पास कोई भी पोषकतत्व उपलब्ध न होने से पौधा लगाने के ५ से १० दिन में फर्टिगेशन शुरु करना अतिआवश्यक है।

हमारे देश में अनेक वर्षों से पारम्परिक खाद का उपयोग किया जा रहा है। इन खादों की पेड़ों को उपलब्धता कम होने व उनकी पानी में पूर्ण घुलनशीलता कम होने के कारण घुलनशील खाद देना लाभप्रद है। पारम्परिक खाद की कार्यक्षमता ३० से ५० प्रतिशत है। जबकि घुलनशील खाद की कार्यक्षमता ८० से ९० प्रतिशत है। घुलनशील खाद अम्लीय होने से जमीन की क्षारीयता को कम करने में सहायक हैं। घुलनशील खाद के उपयोग से १० से २० प्रतिशत खाद की बचत हो सकती है।

तलिका १२ : फर्टिगेशन के लिए खाद की मात्रा और समयः (फास्फोरिक एसिड का इस्तेमाल करने पर)

नाइट्रोजनः २००　　फास्फोरसः ७०　　पोटाशः ४०० ग्रॅाम प्रति पौधा

खाद देने का समय	खाद का नाम	कुल खाद की मात्रा (किलो)	खाद की मात्रा प्रति हजार पौधे (प्रति चौथे दिन) (किलो)
पौधा लगाने के ७ से ६७ दिन तक	युरिया फास्फोरिक एसिड सफेद पोटाश या ००:००:५०	९०.० ४४.० १३०.० १००.०	४.५०० २.२०० ६.५०० ५.०००
पौधा लगाने के ६८ से १२७ दिन तक	युरिया फास्फोरिक एसिड मैग्निशियम सल्फेट सफेद पोटाश या ००:००:५०	१२०.० ४४.० ३०.० १३०.० १२०.०	६.००० २.२०० १.५०० ६.५०० ६.००
पौधा लगाने के १२८ से १८७ दिन तक	युरिया मैग्निशियम सल्फेट सफेद पोटाश या ००:००:५०	१२०.० ३०.० १३०.० १२०.०	६.००० १.५०० ६.५०० ६.०००
पौधा लगाने के १८८ दिन से ३१५ दिन तक	युरिया सफेद पोटाश या ००:००:५०	१०७.५ २७९.० २५६.०	२.५०० ६.५०० ६.०००

युरिया　-　४३७ कि. ; २०१ नाइट्रोजन (ग्राम/पौधा)

फास्फोरिक एसिड　-　८८ कि. ; ७० फास्फोरस (ग्राम/पौधा)

पोटॅश　-　६६९ कि. ; ४०१ पोटाश (ग्राम/पौधा)

या

०:०:५०　-　५९६ किलो. ; २९८ पोटाश (ग्राम/पौधा)

नोट : जमीन का पीएच ७.५ से कम होने पर फास्फोरिक एसिड का इस्तेमाल न करें

तालिका १३ : फर्टिगेशन के लिए खाद की मात्रा और समय (१२:६१:० इस्तेमाल करने पर)

नाइट्रोजन: २००　　फॉस्फोरस: ७०　　पोटाश: ४०० ग्रॉम प्रति पौधा

खाद देने का समय	खाद का नाम	कुल खाद की मात्रा (किलो)	खाद की मात्रा प्रति हजार पौधे (प्रति चौथे दिन) (किलो)
पौधा लगाने के ७ से ६७ दिन तक	युरिया १२:६१:०० सफेद पोटाश या ००:००:५०	८०.० ५५.० १३०.० १००.०	४.००० २.७५० ६.५०० ५.०००
पौधा लगाने के ६८ से १२७ दिन तक	युरिया १२:६१:०० मैग्निशियम सल्फेट सफेद पोटाश या ००:००:५०	१००.० ६०.० ३०.० १३०.० ११०.०	५.००० ३.००० १.५०० ६.५०० ५.५००
पौधा लगाने के १२८ से १८७ दिन तक	युरिया मैग्निशियम सल्फेट सफेद पोटाश या ००:००:५०	१२०.० ३०.० १३०.० ११०.०	६.००० १.५०० ६.५०० ५.५००
पौधा लगाने के १८८ दिन से ३१५	युरिया सफेद पोटाश या ००:००:५०	१०७.५ २७९.० २८६.०	२.५०० ६.५०० ६.०००

युरिया　-　४०७.५ कि. ; १८७.४५ १३.८ २०१नाइट्रोजन(ग्राम/पौधा)

१२:६१:०　-　११५ कि. ; ७०.१५ फास्फोरस (ग्राम/पौधा)

पोटॅश　-　६६९ कि ; ४०१ पोटाश (ग्राम/पौधा)

या

०:०:५०　-　६०६ कि. ; ३०३ पोटाश (ग्राम/पौधा)

नोटः उपरोक्त खाद की मात्रा केवल मार्गदर्शन के लिये है। मिट्टी परिक्षण रिपोर्ट व प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर इसमें परिवर्तन करें।

४.१४. बगीचे का प्रबन्धन

i) **अन्तर्वर्तीय कार्य व खरपतवार नियन्त्रण:** केला लगाने के बाद खेत की मिट्टी मुलायम रहे इसके लिए तीन माह तक २-३ बार डौरा चलायें। जड़ों को किसी प्रकार का नुकसान नही हो इसका ध्यान जरुर रखें। मिट्टी को मुलायम करके पौधों पर चढ़ायें। तीन माह के बाद अन्तर्वर्तीय कार्य नहीं करें। समय समय पर खरपतवार नियन्त्रण करें। बारिश के बाद पौधारोपण करने पर अधिक अन्तर्वर्तीय कार्य करने की आवश्यकता नहीं होती

ii) **पलवार लगाना (मल्चिंग):** जून से नवम्बर तक लगाई जाने वाली केले की फसल पर प्लास्टिक पलवार का प्रयोग करना चाहिए। पलवार के प्रयोग से खरपतवार पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। इससे मिट्टी में नमी संरक्षित रहती है तथा पौधो की वृद्धि तेज होती है। ग्रीष्म काल (मार्च- अप्रैल) में लगाई जाने वाली फसल पर पलवार का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चित्र.१३ : केला फसल पर प्लास्टिक पलवार के प्रयोग का प्रभाव

iii) **अंकुरित पौधे निकालना :** केला पौधे लगाने के बाद बड़ी संख्या में मुख्य पौधे के बाजू में अंकुरित पौधे निकलने लगते हैं जो मुख्य पौधे से प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं इसलिए उन्हें समय पर खुरपी की सहायता से निकालना जरुरी है। किसी भी प्रकार की दवा का उपयोग नहीं करें, क्योंकि उससे केले के कन्द को नुकसान होता है व कीट का प्रकोप होने की संभावना रहती है।

iv) **पत्तों की कटाई :** जैसे जैसे पेड़ों की जोरदार वृध्दि होती है वैसे ही नये पत्ते आने की मात्रा बढ़ जाती है। साधारणतया प्रत्येक माह में ४ से ५ नये पत्ते आते हैं। सबसे पुराने व नीचे के पत्ते पीले होकर सूखने लगते हैं। इन पीले या सूखे हुए पत्तों को काटकर खेत के बाहर ले जाकर कम्पोस्ट के गढ्ढे में डालें। कोई भी हरा पत्ता नहीं काटें। केला पुष्प बाहर आने के पूर्व पेड़ पर कम से कम १५-१६ कार्यक्षम पत्ते होना चाहिये। फल वृध्दि के समय पेड़ पर १०-१२ कार्यक्षम पत्ते होना चाहिये।

चित्र १४ : केला के सभी गुच्छे निकलने के बाद फूल की कटाई करना

v) **केला-फूल कटाई:** केला फूल के तने में सभी गुच्छे निकलने के बाद फूल को काट दें।

vi) **फूल तने की छंटाई:** केला फूल बाहर आने के बाद व सभी फलों के गुच्छे निकलने के बाद सबसे नीचे के फूल के तने का भाग प्रायः अधूरा रह जाता है उसको छांट दें। निर्यात के लिये तैयार किये जाने पर एक फूल के तने पर अधिकतम ८ गुच्छे रखें व बाकी काट दें। फूल के तनों की लम्बाई कम से कम ४ से ५ इंच लम्बी रखें। इसमें देर होनेपर तने की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

vii) **केला के पेड़ों को सहारा देना:** टिश्युकल्चर पौध द्वारा की जाने वाली केले की खेती में केला गुच्छों का औसत वजन २५ से ३५ किलो होता है। इस भार से पेड़ झुकते हैं या तेज हवा चलने पर पौधे गिरते हैं, इसलिए पेड़ों को सहारा दें।

viii) **केले के गुच्छों को ढँकना:** केला फलों के गुच्छों की डंडी बाहर निकलने पर काट दें। गुच्छे के तनों को सूर्यप्रकाश से बचाने की आवश्यकता होती है इसलिए केले के सूखे पत्तों की छतरी बनाकर पौधों के पत्तों पर लटका कर रखें। इससे

चित्र.१५ : केला के गुच्छ को सूर्य प्रकाश से बचाने के लिए ढँकना।

तनों का अधिक तापमान व हवा से बचाव होगा। यदि ऐसा नहीं करते तो तनों पर गर्मी से काला धब्बा पड़ जाएगा व तना सड़ कर फल के गुच्छों के साथ गिर जाएगा।

ix) **तनें के गुच्छों को छिद्रित प्लास्टिक बैग से ढँकना व फलगुच्छ में कुशन डालना:** निर्यात योग्य केला बनाने के लिये केले की तनों के गुच्छे मुक्त होने पर दो पत्तों के बीच में या फल के दो गुच्छों के बीच की कतार में ५ मि.मी. मोटाई का नरम फोम लगाएँ तथा तनों पर अल्ट्रावायलेट प्रक्रिया किया हुआ आसमानी रंगवाला ६ छिद्रोंवाला प्लास्टिक बैग लगाकर डंडी से बांध दें।

x) **फलों के तनों पर छिड़काव करना:** फलों के गुच्छों के तनों को प्लास्टिक बैग से ढकने से पहले क्लोरोपायरीफॉस २ मि.लि व कार्बेन्डजिम १ ग्राम मात्रा का एक लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। केलों की वृध्दि के लिये ००:५२:३४ - ३ ग्राम मात्रा एक लिटर पानी में घोलकर दो से तीन बार सप्ताह के अन्तर से छिड़काव करें।

xi) **फलों के तनों को टैंग लगाना:** प्लास्टिक बैंग से ढँके हुए फलों के गुच्छों का घड काटने योग्य हो गया है यह पहचान करने के लिये अलग अलग रंगो के टैग प्रति सप्ताह एक रंग के टैग के हिसाब से ८-१२ सप्ताह के लिये ८-१२ रंगों के टैग लगायें। इससे किस टैग के फलों के गुच्छों का तना काटने योग्य हो गया है इसकी पहचान कर सकते हैं।

xii) **फल गुच्छा अलग करना:** फल के तनों से फलगुच्छ अलग करने के लिये पॉलिइथिलीन तार या स्टेनलेस स्टील के चाकू से फलगुच्छों को काटें।

xiii) **पेड़ी फसल के लिये अंकुरित पौधे का चयन:** साधारणतया २०-२५ प्रतिशत केला बाहर निकलने पर अंकुरित पौधे निकालना बंद करें व ६० से ७० प्रतिशत केला बाहर निकलने पर जिस दिशा में फलों के तनों का गुच्छा है उसके विपरीत दिशा

चित्र १६ : पेड़ी फसल के लिये अंकुरित पौध छोड़ना

चित्र १७ : केले की पेंड़ी फसल (रैटून)

में सभी अंकुरित पौधे रखें। अंकुरित पौधे का चयन करते समय २-३ बार काटा हुआ या एक समान ऊँचाई व मोटाई वाला व तलवार जैसे पत्तों वाला अंकुरित पौधा पेड़ी फसल के लिये रखें व अन्य पौधों को काट दें। पेड़ी के लिये चुने हुये अंकुरित पौधो को तुरन्त फॉस्फोरस व पोटाश की मात्रा दें।

इस अंकुरित पौधे छोड़नेवाली पद्धति से १२ माह में पहली फसल २० से २१ माह में दूसरी व २८ से ३० माह में तीसरी फसल, ऐसे ३० माह में कुल तीन फसल प्राप्त होगी।

xiv) **पेड़ी फसल के लिये तैयारी:** साधारणतया ९०% पेड़ों की कटाई होने के बाद गुडाई कर मिट्टी को भुरभुरी करें। १५ किलो गोबर की खाद प्रति माह के हिसाब से डालें व फिर से क्यारी बनाकर खाद देने का चक्र आरंभ करें।

xv) **वायु अवरोधक:** वायु वेग अधिक होने से पेड़ के पत्ते फटते हैं इस कारण से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया धीमी होती है व फलों की गुणवत्ता की भी हानि होती है। वायु का वेग ८० किमी. प्रति घंटा होने पर सम्पूर्ण बगीचा गिर जाता है। इसके लिये बगीचे के चारों ओर केला पौधे लगाने के दो माह बाद वायुरोधक गजराज घांस या ढैंचा लगाएँ व उसकी अलग से टपक सिंचाई पद्धति से सिंचाई करें। इसके लगाने से बगीचे का वायु वेग से बचाव होगा और बगीचे में आर्द्रता भी बनी रहेगी।

चित्र १८ : केला की फसल को तेज वायु से बचाने के लिए वायु अवरोधक का प्रयोग

४.१५. परिवर्तनीय वातावरण में केला फसल का प्रबन्धन:

आप मौसम परिवर्तन का प्रभाव अनुभव कर रहे होंगे। औसत से अधिक वर्षा अधिक ठंड व अधिक गर्मी इसका ही परिणाम है। बारिश के मौसम में गर्मी या ठंड के मौसम में बारिश या गर्मी के मौसम में ठंड ऐसा कई बार अनुभव किया होगा। विगत गर्मी के मौसम में जलगांव का तापमान ४५°से. तक गया था व सर्दी के मौसम में कई बार १०°से. से कम था। सम्पूर्ण खानदेश परिसर में केले के बगीचे गर्मी में झुलस जाते हैं और सर्दी के मौसम में अकड़ जाते हैं व बारिश में

सीगाटोका की बीमारी के प्रकोप से क्षतिग्रस्त होते हैं। ऐसी परिस्थिति में कृषकों को केला फसल लेने के लिये विशेष उपचार करने पड़ते हैं। तन्त्रज्ञान व तकनीक की सहायता से खेती करने की पध्दति में परिवर्तन कर बदलते मौसम में भी अच्छी फसल ली जा सकती है ऐसा हमारा मानना है।

अतिवृष्टि के परिणाम :

केले की फसल विश्व के अनेक देशों में १५०० से ३००० मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में भी ली जाती है। महाराष्ट्र के कोकण को छोड़कर अन्य जिलों में ११०० से १२०० मि.मी. से अधिक बारिश नहीं होती है। परन्तु पहले बारिश के दिनों की संख्या अधिक थी इस कारण अधिक बारिश हो गई ऐसा कहने की स्थिति नहीं होती थी। अब कम दिनों में अधिक बारिश होने से अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याओं से बचने के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें।

- मुख्यतया काली मिट्टी व पानी पकड़ने वाली जमीन में अधिक बारिश से नुकसान होता है। काली जमीन में ऊँची उठी हुई क्यारी पर केला पौधारोपण करें।
- खेत में पानी के निकास के लिये नाली बनाएँ।
- जुलाई-अगस्त में अधिक बारिश होने पर बारिश के बाद पौधों को लगाएँ।
- बारिश में पौधे यदि बड़े हों तो पौधारोपण गर्मी के दिनों में करें।
- दो पेड़ों के बीच अंतर ६ x ५ फिट या ७ x ५ फिट रखें।
- केले पर अतिवृष्टि से करपा(सिगाटोका) रोग का प्रकोप अधिक होता है। इसके लिये प्रतिबंधात्मक फफूंदनाशक का छिड़काव करें।
- केले की कटाई बारिश के दिनों में नहीं हो ऐसी पध्दति से पौधों को लगाएँ।

अधिक ठंड से होनेवाली परेशानियाँ:

सर्दी के मौसम में उत्तर भारत में शीतलहर अधिक आने के कारण सर्म्पूण उत्तर व मध्यभारत में ठंड से काफी गहरा प्रभाव होता है अधिक ठंडी से केला पौधों की वृद्धि व विकास पर काफी बुरा प्रभाव होता है।

- तापमान १०°से. से कम होने पर पौधों की वृध्दि रुक जाती है।
- पोषकतत्त्वों की उपलब्धि में कमी होने से अधिक ठंडे तापमान में पोटाश, मैग्नीशियम, लोह व जस्ता की कमी लक्षणीय होती है।
- दो से चार माह के आयु वाले बगीचे के शीर्ष सफेद आते हैं व पत्तों का आकार काफी छोटा हो जाता है।

- लवणीय जमीन, सफेद व पीली मिट्टी में कैल्शियम की मात्रा बहुत अधिक होने से लोह तत्व की कमी हो जाती हैं व छोटे पौधों के शीर्ष मुरझाने लगते हैं।
- फलों के गुच्छों की डंडी निकलनेवाली स्थिति में पौधों के थ्रोट में चोकिंग होने लगती है व डंडी बाहर नहीं आ पाती।
- नवीन पर्णगुच्छ सीधा-टेढ़ा निकलता है।.
- पुराने व बड़े पेड़ों के पत्ते अचानक पीले होकर मुरझाने लगते हैं। इसको हम चरका कहते हैं।
- फल गुच्छों के तनों का विकास रूक जाता है। कांदेबाग व पेड़ी फसल की कटाई शीघ्र नहीं हो पाती।
- पोषकतत्त्वों की उपलब्धता में कमी होने के कारण कुछ बगीचों में करपा रोग में वृध्दि होती है।
- तापमान १०°से. से कम लगातार रहने पर जड़ों का विकास रुक जाता है।
- केला फल के छिलकों पर ठंड का प्रभाव हो जाने से रायपनिंग चैंबर में फलों पर रंग व चमक नहीं आ पाती।

उपाय :

- केले के बगीचे को पानी का तनाव नही दें। टपक सिंचाई सयन्त्र रात में चला कर सिंचाई करें।.
- बगीचे में गेहूं का भूसा, धान का भूसा, या मक्के के भूसे को जगह जगह ढ़ेर करके जलाकर धुआँ करें। इससे तापमान २°से. बढ़ेगा।
- बगीचे में ठंडी हवा न आ सके इसलिए बाग के चारों ओर वायु विरोधक फसल लगाएँ।
- बड़ा बगीचा होनेपर टपक सिंचाई से युरिया ५ किलो, सफेद पोटाश ६ किलो, फास्फोरिक एसिड १.५ किलो, मैग्नीशियम सल्फेट, १ किलो प्रति हजार पौधे के हिसाब से हर चौथे दिन दें।
- छोटे पेड़ो में सूक्ष्म पोषकतत्त्व ३० मि. ली, फेरस सल्फेट ३० ग्राम, १५ लिटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।.
- जिंक सल्फेट व फेरस सल्फेट १० ग्राम प्रति माह दें।
- पांच माह से अधिक आयु वाले पौधों को १० से २० लिटर पानी प्रति माह दें। दो से तीन माह आयु वाले पौधों को ६ से ८ लिटर पानी प्रतिदिन दें।
- जड़ क्षेत्र में कीचड़ होने लगे इतना पानी कभी न दें। जड़ क्षेत्र में हमेशा वायु संचारण की स्थिति कायम रखें।

- निकले हुए गुच्छों के तने पर छिद्रित प्लास्टिक बैग लगाएँ।
- फलों के गुच्छें पर ००:५२:३४ जलघुलनशील खाद ३० ग्राम, १५ लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

तापमान कम होनेपर पेड़ों पर पीलापन दिखाई देता हैं। नवीन पत्ते नहीं निकलते। पत्ते बिलकुल छोटे निकलते हैं व पास पास निकलते हैं। फल के गुच्छों के तनों का निर्माण धीमा हो जाता है, फल गुच्छ व फलों की संख्या कम होती है। इसलिये किसानों को प्रबन्धन ठीक तरह से करना चाहिये। तापमान १६°से. से अधिक होने पर बगीचे के पेड़ पुनः सुधरने लगते हैं। शीर्ष भाग यदि जलने लगता है तो पेड़ों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड ३० ग्राम और क्लोरोपायरीफॉस ३० मि. लि. मिलाकर छिड़काव करें। यह रोग नहीं है। ठंड से पत्ते जलते हैं, इसलिये घबरायें नहीं। फरवरी में बगीचे ठीक हो जाते हैं व बाजार भाव भी फरवरी से बढ़ने लगता है।

अति उष्म तापमान में केला बगीचे का प्रबन्धन :

अप्रैल, मई, जून में ग्लोबल वॉर्मिंग से अनेक जिलों में तापमान में भारी वृध्दि होती है व आर्द्रता कम हो जाती है इस कारण से केले जैसी उष्ण व आर्द्र वातावरण की फसल को वातावरण के बदलाव से अधिक क्षति होने की आशंका होती है किन्तु प्रबन्धन पर विशेष ध्यान देने पर बगीचों को कुछ हद तक संभाला जा सकता है।

- सर्वप्रथम पौध लगाने के समय में परिवर्तन करना आवश्यक है।
- उष्ण तापमान के माह जैसे अप्रैल, मई, जून में फल कटाई का समय आये इस हिसाब से पौधों को न लगायें।
- अधिक गर्मीवाले माह में फसल एक या दो माह की हो या फलगुच्छ निकलने की स्थिति में हो।
- बगीचे की सिंचाई जैन एक्यूरा इनलाईन टपक सिंचन से करें। यह पानी के साथ ही आर्द्रता भी बनाये रखती है।
- वातावरण के अनुसार लगाने की दूरी रखें।
- केले के पौधों को पूर्ण ग्रीष्मकाल में फर्टिगेशन पद्धति से खाद दें।
- बगीचे को पानी का तनाव न होने दें।
- बगीचे के चारों ओर वायु विरोधक लगाएँ।
- बगीचे में प्रति पौधा ४०० ग्राम से कम पोटाश नहीं दें।
- हल्की मिट्टी में दिन में दो बार पानी दें।

४.१६ . कीट एवं रोग प्रबन्धन :

४.१६.१ - कीट :

क्र.	कीट के नाम	लक्षण	नियन्त्रण
०१	कन्द छेदक कीट	कन्द में छेद कर टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग कर देता है इस कारण पेड़ कन्द सहित जमीन से उखड़ जाते हैं। पेड़ के तनो में छिद्र करके कीट उसे अन्दर ही अन्दर खाता है। छिद्र में से चिकना द्रव बाहर आता दिखाई देता है।	लगाते समय कन्दों को मेटासिस्टॉक्स के ०.५% घोल में डुबोकर उपचारित करें। मिट्टी में १० ग्राम फोरेट डालें एवं प्रतिमाह ५०० ग्राम नीम की खली डालें।
०२	तना छेदक कीट	पेड़ के तनो में छिद्र करके कीट उसे अन्दर ही अन्दर खाता है। छिद्र में से चिकना द्रव बाहर आता दिखाई देता है।	तनों में हुए छिद्र को तार से पंच करें या इंजेक्शन से क्लोरोपायरीफॉस ०.५% घोल इंजेक्ट करें।
०३	हरा छोटा मच्छर (माहू)	वैसे इस कीट से विशेष नुकसान नहीं होता किन्तु यह कीट विषाणुजन्य रोग (वायरस) फैलाने में सहायक होता है।	मेटासिस्टाक्स या डाइमेथोएट ०.२% घोल का छिड़काव करें।
०४	बनाना थ्रिप्स्	यह कीट दो केलों के मध्य में रहता है यह केले के छिलके से रस चूसे जाने से पीछे के भाग में दरार पैदा करता है। इससे फफूंद का प्रादुर्भाव होता है और केला लाल दिखाई देता है।	केला फूल बाहर आने के बाद ०.३% क्लोरोपायरीफॉस घोल का छिड़काव करें। उसके बाद गुच्छों को छिद्रित प्लास्टिक बैग से ढँकें ।

०५	सूक्ष्म कृमि (मिली बग)	यह कीट जड़ों में रहता है। जड़ों के रस को चूसता है इससे जड़ें काली पड़कर सूखने लगती हैं। जड़ों पर गांठें बनने लगती हैं व पौधों की वृध्दि रुक जाती है।	पौध लगाते समय ३०० ग्राम नीम केक प्रति पौधा दें या फोरेट १० ग्राम प्रति पौधा दें। पेड़ के पास एक गेन्दा का पौधा लगाएँ।

४.१६.२ - जीवाणु व फफूंदजन्य रोग :

क्र.	रोग का नाम	लक्षण	नियन्त्रण
०१	इर्विनिया रॉट	यह जीवाणुजन्य रोग है। इस कारण पौधों में नये आने वाले पत्ते सूखते हैं। पौधें हाथ लगाते ही आसानी से उखड़ जाते हैं।	स्ट्रोप्टोसायक्लीन ३ ग्राम १० लि. पानी में + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड २० ग्राम १० लि. पानी में घोलकर छिड़काव करें। पेड़ के पास १०० मि. लि. घोल प्रति पौधा डालें।
०२	पनामा विल्ट	यह फफूंदजन्य रोग है। दक्षिण भारत में इसका प्रकोप अधिक होता हैं। इसके कारण पत्ते के किनारे सूखते हैं और बाद में पूरा पत्ता सूख जाता है, फिर पत्तों के डंठल सूखने लगते हैं व पत्ते गिरने लगते हैं। तना भी फटने लगता है।	सबसे महत्वपूर्ण है कि जमीन में जलनिकास होना चाहिये। मिट्टी में भरपूर कम्पोस्ट खाद का उपयोग करें जिस पौधें में इस रोग का प्रकोप अधिक हो उसे उखाड़कर जला दें और उसमें ट्राइकोडर्मा कल्चर डालें। पत्तों पर ट्रायकोडर्मा के ०.२% मिश्रण का छिड़काव करें।

०३ - सिगाटोका या करपा :

केले पर सिगाटोका रोग का इतिहास ११० वर्ष से अधिक समय का है। सर्वप्रथम पीला सिगाटोका रोग का प्रकोप व निदान घाना देश में वर्ष १९०२ में हुआ। उसके बाद फिजीमें १९१३ में पीले सिगाटोका का प्रकोप हुआ। उसके बाद ऑस्ट्रेलिया, श्रीलंका, अफ्रीका व १९३४ में अमेरिका में इस रोग का उग्र प्रकोप हुआ। पीला सिगोटीका, *मायकोस्पेरिला म्यूसिकोला,* फफूंद से होता है।

चित्र १९ : केला का करपा रोग

काला सिगाटोका सर्वप्रथम फिजी देश के सिगाटोका द्वीप पर दिखाई दिया व काला सिगाटीका अधिक घातक होने के कारण सिगाटोका नाम से संबोधित किया जाने लगा। काला करपा *माइकोस्पेरिला फिजिएन्सीस* फफूंद से होता है। फिजी के प्रकोप के बाद १९७२ से १९८० के दरमियान होन्डुरस, कोस्टारिका, इक्वेडोर, कोलम्बिया देशों में बड़े मात्रा में रोग का प्रकोप हुआ। नारंगी रंग का करपा रोग *माइकोस्पेरिला इन्सूली* फफूंद से होता है किन्तु यह रोग इतना घातक नहीं है व इसका प्रकोप भी हमारे यहाँ कम है।

महाराष्ट्र में सिगाटोका रोग के प्रकोप का अध्ययन करें तो यह ज्ञात होता है कि १९९५-९६ में नांदेड़, परभणी जिलों में बहुत ज्यादा इस रोग का प्रकोप हुआ व केला बगीचों की बहुत हानि हुई। उसके बाद अर्धा पुरी जाति की कन्दों की आवक शहादा तहसील में हुई और उसके साथ ही सिगाटोका रोग का प्रसार हुआ। १९९६ से १९९८ तक यहाँ के कृषकों को सिगाटोका के बारे में अधिक जानकारी नहीं थी। उसके बाद १९९८-९९ में इस रोग का प्रकोप जलगांव, रावेर, यावल, मुक्ताईनगर तहसील में बढ़ा।

रोग के लक्षण :

पीला सिगाटोका :

सर्वप्रथम हल्के पीले रंग की लकीरें पत्तों के ऊपरी सतह पर नजर आती हैं। लकीरों का परिवर्तन धब्बों में होने लगता है व पत्तों के नीचे भी नजर आने लगते हैं, भूरे रंग के धब्बे काले होने लगते हैं, बाजू का भाग पीला होने लगता है। आँखों के आकार के धब्बे बनने लगते हैं सभी धब्बे इकठ्ठे होकर पूर्ण पत्ते पर फैल जाते हैं व पत्ते सूखने लगते हैं। सर्वप्रथम पत्तों के किनारों पर धब्बे दिखाई पड़ते हैं।

काला सिगाटोका :

काला और पीला-सिगाटोका रोग आसानी से पहचाना जा सकता है। काले सिगाटोका में काले रंग के दाग पत्तों के नीचे से दिखाई देते हैं व नये पत्तों पर भी इसके लक्षण दिखाई देते हैं। भूरी-लाल रेखाएं पत्तों के नीचे भी दिखने लगती हैं। पीला सिगाटोका रोग की मात्र पीली रेखाएं पत्तो के ऊपरी सतह पर भी होती हैं। काला सिगाटोका तीसरे पत्ते तक प्रकोप करता हैं। काला सिगाटोका के दाग-धब्बे भूरे रंग के होते हैं व उनके किनारे काले रंग के होते हैं। काला करपा बहुत ही घातक माना जाता है, क्योंकि इसके प्रकोप से पौधों में फलों के गुच्छों की असामयिक पक्वता की सम्भावना अधिक होती है।

नारंगी सिगाटोका :

यह अधिक घातक नहीं है। जलगाँव जिले में प्रकोप नगण्य है।

रोग प्रसार का कारण :

i) **मौसम :** केले पर सिगाटोका रोग के प्रकोप में मौसम का बहुत बड़ा हाथ है। रोग के स्पोर तैयार होने व रोग के जीवनचक्र पूर्ण होने के लिये हवा में नमी, रिमझिम बारिश, ९८% आर्द्रता व २३°से. से ३०°से. तापमान उपयुक्त होता है। मौसम शुष्क रखने पर रोग का प्रकोप कम होता है, बारिश होने पर अधिक होता है। बारिश के कारण स्पोर अधिक निर्मित होते हैं। रोग के प्रकोप होने के बाद लक्षण दिखाई देना वातावरण पर निर्भर करता है। उष्ण व शुष्क तापमान में रोग ७०-७५ दिन तक सुप्तावस्था में रहता है व मध्यम व नम वातावरण में रोग के चिन्ह १५ दिन में दिखने लगते हैं।

ii) **पत्तों की आयु/ अवस्था:** पेड़ के नये पत्ते व सबसे नीचे के अकार्यक्षम पत्ते रोग के प्रकोप से ग्रस्त होते हैं।

iii) **पेड़ की सहनशीलता:** पेड़ शक्तिशाली हो, उसकी वृध्दि सशक्त हो, प्रत्येक सप्ताह में उसमें नये पत्ते निकलते हों, ऐसे पेड़ों पर रोग का प्रकोप कम होता

है। शक्तिशाली बगीचे में रोग सुप्तावस्था में रहते है व पेड़ो के नीचे वाले पत्ते रोगग्रस्त होते हैं परन्तु ५ से ६ पत्ते अच्छे रहते हैं। बगीचे का प्रबन्धन ठीक नहीं होता है तो रोग का प्रकोप बढ़ता है।

iv) **पोषकतत्त्व व जल प्रबन्धन:** पेड़ों को पोषकतत्त्वों की पूर्ति असंतुलित व आवश्यकता से कम किये जाने से एवं पुराने बगीचे पर रोग अधिक दिखाई देता है। बगीचे में पानी का निकास न होने या बगीचे को नालियों से खुला पानी देने या आवश्यकता से अधिक पानी देने के कारण रोग नियन्त्रण करना कठिन होता है। इसके लिये टपक सिंचाई संयंन्त्र से आवश्यकतानुसार पानी दें। बगीचे में जलनिकास के लिए नाली बनायें।

v) **पेड़ की अवस्था:** सिगाटोका रोग का प्रकोप पेड़ की मुख्यवृध्दि की अवस्था, फलधारण की अवस्था व उस पर गुच्छों के होने की अवस्था में अधिक होने से रोग का प्रकोप बहुत ज्यादा होता है। अनेक कृषक घड़ के पोषणकाल में रासायनिक खाद नियमित नहीं देते हैं इससे रोग का प्रकोप बढ़ता है। पेड़ पर ६ से कम हरे पत्ते रहने व बाकी सभी पत्ते जलने से केले का विकास नहीं होता है, केले के फल असामायिक पकने लगते हैं व अधिक आर्थिक नुकसान होता है।

vi) **अन्य शस्य क्रियाएँ :** बगीचे से रोगग्रस्त पत्ते नियमित नहीं निकालने, बगीचे को अस्वच्छ रखने एवं रोगग्रस्त कन्द का उपयोग करने से रोग का प्रकोप बहुत तेजी से होता है।

रोग का प्रभावी प्रबन्धन व नियन्त्रण:

i) **रोग का आभास/ अंदाज लगाना:** सिगाटोका रोग के अचूक व योग्य व कम खर्च में नियन्त्रण के लिये वातावरण में होनेवाले बदलाव, तापमान व आर्द्रता का अध्ययन कर रोग वृध्दि के लिये अनुकूल वातावरण तैयार होने की पहचान करें। बरसात शुरु होने के पहले प्रतिबन्धक छिड़काव करें। मौसम के अनुसार छिड़काव में व औषधियों में परिवर्तन करें। रोग का अंदाज सही समय पर कर अचूक रीति से नियोजन करने पर रोग नियन्त्रण में खर्च भी कम लगता है व नुकसान भी कम होता है। विगत दो तीन वर्षो का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हो सकेगा कि रोग कब आता है व कैसे प्रकोप बढ़ता है।

ii) **शस्य क्रियाओं के द्वारा रोग की रोकथाम:**

- रोगग्रस्त पत्तों को काटना या पत्तों के रोगग्रस्त भाग को काटना ताकि बीजाणु निर्माण की रोकथाम हो। रोगग्रस्त पत्तों को कंपोस्ट के गढ्ढे में डालना व ट्रायकोडर्मा विरिडी की सहायता से नष्ट करना।
- पेड़ों की सघनता कम करने के लिये दूरी १.८ मीटर X १.५ मीटर या १.८ मीटर X १.८ मीटर पर पौधे लगाना।

- रोगमुक्त टिश्यूकल्चर पौधों को लगाना।
- कन्द को लगाते समय फफूंदनाशक दवा के घोल से कंदों को उपचारित करना।
- बगीचे में जलनिकास का प्रबन्धन करना, आवश्यक होने पर नाली बनाना या ऊँची उठी हुई क्यारियां बनाकर पौधे लगाना।
- उपयुक्त समय पर उपयुक्त मात्रा में व पेड़ों की अवस्थानुसार पोषकतत्त्वों को देना।
- कम्पोस्ट खाद में जैविक फफूंदनाशक दवाइयों का उपयोग करना।
- गुच्छों पर छिड़काव से संरक्षण करने के लिये गुच्छों पर प्लास्टिक थैली लगायें।

रासायनिक नियन्त्रण (फफूंदनाशक दवा का छिड़काव करना) :

फफूंद नाशक दवा के उपयोग से रोग का नियन्त्रण प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। स्पर्शजन्य फफूंद नाशक, पत्तों के पृष्ठभाग पर मौजूद रोग के बीजाणु को नष्ट करता है और अन्तरप्रवाही फफूंद नाशक पत्तों के अंदर अवशोषित होकर पत्तों की पेशियों में रोग को नष्ट करता है इसलिये स्पर्शजन्य व अन्तरप्रवाही फफूंदनाशक का उपयोग करना जरुरी है। शुष्क मौसम में पंद्रह दिनों में एक छिड़काव व नम वातावरण में दस दिन में एक छिड़काव करना आवश्यक है। नम वातावरण में फफूंदनाशक के लिये फफूंद नाशक के साथ खनिज तेल का उपयोग लाभदायक सिध्द हुआ है।

तालिका १३ : सिगाटोका नियन्त्रण के लिये छिड़काव का समयचक्र - जून से दिसम्बर :

अ.नं.	माह	घटक	मात्रा	मिनरल ऑईल
१	जून-१	मैन्कोझेब	०.२	१
२	जून-२	बिनोमिल	०.१	१
३	जुलाई-१	प्रॉपिकोनेजाल	०.१	१
४	जुलाई-१५	हेक्झाकोनेजाल	०.१	१
५	अगस्त-१	ट्रायडोमॉर्फ	०.१	१
६	अगस्त-१५	प्रॉपिकोनेजाल	०.१	१
७	सितम्बर-१	हेक्झाकोनेजाल	०.१	१
८	सितम्बर-१५	बिनोमिल	०.१	१
९	अकतूबर-१	कार्बेन्डाजिम	०.१	१
१०	अकतूबर-१५	ट्रायडोमॉर्फ	०.१	१
११	नवम्बर-१	मैन्कोजेब	०.२	१
१२	नवम्बर-१५	बिनोमिल	०.१	१
१३	दिसम्बर-१	कार्बेन्डाजिम	०.१	१
१४	दिसम्बर-१५	ट्रायडोमॉर्फ	०.१	१

प्रति हेक्टर छिड़काव के लिये पानी के अन्दाज के अनुसार १.७५० लिटर

छिड़काव का तरीका :

होन्डुरस, कोस्टारिका, जमाईका, इक्वेडोर, कोलम्बिया, मेक्सिको और ब्राजील देशों में व्यावसायिक आधार पर केले की खेती की जाती है व लगातार ३०० हेक्टर से १००० हेक्टर के बगीचे होते हैं। फफूंदनाशक का छिड़काव एकसमान व एक ही समय पर करने के लिये वायुयान से छिड़काव किया जाता है। इसके लिये १९०० लिटर मिश्रण एक समय परिवहन किये जा सकने वाले वायुयान की सहायता से बगीचे पर छिड़काव किया जाता हैं।

हमारे देश में केले की खेती करने वाले छोटे किसान होते हैं व बगीचे एक ही जगह पर न होने के कारण वायुयान से छिड़काव करना संभव नहीं हैं परन्तु हवाई छिड़काव जैसा प्रभाव दे सके ऐसे एचटीपी पम्प के द्वारा छिड़काव किया जाना जरुरी है। छिड़काव पौधों के ऊपर हवा में भी करना चाहिये, व दवा की बूंदे पत्तों पर गिरने दें, इससे रोग का प्रबन्धन अच्छी तरह से होगा।

४.१६.३ - विषाणुजन्य रोग :

क्र.	रोग का नाम	लक्षण	नियन्त्रण
०१	बनाना स्ट्रीक वाइरस 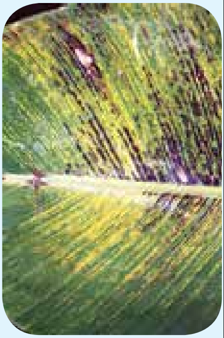	यह भी एक भयानक रोग है, दक्षिण भारत व मध्यप्रदेश में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। सर्वप्रथम पत्तों पर पीले दाग के साथ रेखाएँ दिखाई देती है व इन रेखाओं पर नेक्रोटिक वृद्धि हुई दिखती है। शीतकाल में रोग के लक्षण ज्यादा दिखाई देते है। पौधों की वृद्धि रुक जाती है व अधिक आर्थिक नुकसान होता है।	लक्षण दिखाई देते ही रोगग्रस्त पेड़ों को जड़सहित उखाड कर नष्ट करें व पेड़ों पर अन्तरप्रवाही कीटनाशक का छिड़काव करें।
०२	बनाना ब्रैक्ट मोजैक वाइरस	पेड़ के तने पर, पत्तों के डंठल व अंकुरित पौधों पर छड़ी जैसी गुलाबी, लाल लकीरें दिखाई देती हैं। पत्तों का आकार छोटा होता है व पेड़ ट्रेवलर पाम जैसा दिखाई देता हैं।	उपरोक्तानुसार रोग नियन्त्रण करें।

०३ - केला पर्णगुच्छ वाइरस (Banana Bunchy Top Virus) :

पर्णगुच्छ वाइरस, केला फसल का अत्याधिक घातक रोग माना जाता है। देश में केरल, तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, छत्तिसगढ़, गुजरात, उत्तर व उत्तरपूर्व जैसे सभी केला उत्पादक राज्यों में इस रोग का प्रकोप विगत कई वर्षो से होता आया है। पर्णगुच्छ वाइरस ग्रस्त पेड़ों से उत्पादन मिलता ही नहीं है। एक बार रोग पेड़ों में लग गया कि उसका उपचार नहीं किया जा सकता। इसलिये इससे बचाव के लिये उचित व्यवस्थापन करना अधिक महत्वपूर्ण है।

रोग के लक्षण :

सर्वप्रथम रोग के लक्षण पत्तों पर दिखाई देते हैं। पत्तों पर गहरे हरे रंग की मोटी शिराएं दिखती हैं व पत्तों की मुख्य शिरायें गहरे हरे रंग की होने लगती हैं व कुछ शिराएँ हल्की सफेद व पीली दिखाई देने लगती हैं। नये आनेवाले पत्तो में अन्तर कम होता है व पत्तों का गुच्छा बनने लगता है। इसलिये इसे पर्णगुच्छ कहा जाता है। रोगग्रस्त पौधों पर गुच्छा नहीं बनने या गुच्छा निकलते समय रोग का प्रकोप हुआ तो बिलकुल कमजोर गुच्छे बनते हैं और आकार बहुत छोटा होता हैं।

चित्र २० : केला का पर्णगुच्छ रोग

रोग का प्रसार :

केले के पर्णगुच्छ वाइरस का प्रसार *पेंटालोनिया नायग्रोनर्वोसा, अफिस गौसापी, आयझर पर्सी* आदि रस चूसनेनाले कीटों से होता है। पर्णगुच्छ रोग पालन दूसरे मातृवृक्ष पर होता है। केले की जंगली किस्म *एलोकेसिया, कैलैडियम, डाईफेनबेसिया, ज़ैन्थोसोमा कैनेसी* के साथ ही अनेक वनस्पतियों में इस रोग का वास होता है। अन्य वैकल्पिक पौधों से या रोगग्रस्त बगीचों से भी इसका प्रकोप होता है।

केला पर्णगुच्छ वाइरस रोग का नियन्त्रण :

इस रोग का नियन्त्रण कठिन होता है। एकात्मक व्यवस्थापन से ही रोग को दूर किया जा सकता है।

i) रोगग्रस्त पौधों को जड़ सहित नष्ट करना।

ii) रोगग्रस्त जगह से कन्दों का चयन नहीं करना।

iii) वाइरस इन्डेक्सिंग किये हुए टिश्युकल्चर केले के पौधों को लगाना ।

iv) बगीचे के आसपास स्वच्छता रखना।

v) माहू संवाहक (एफिड वेक्टर) जो रस चुसनेवाले कीट हैं, इन पर अन्तरप्रवाही कीटनाशक जैसे मेटासिस्टाक्स १.२५ ली. या नुबाक्रान का उसी दर से छिड़काव कर नियन्त्रण करना।

इस प्रकार से व्यवस्थापन करने से रोग पर नियन्त्रण किया जा सकता है व बगीचे में संभावित प्रकोप को रोका जा सकता है।

०४ - कुकुम्बर मोजैक वाइरस :

कुकुम्बर मोजैक वाइरस रोग को सीएमवी नाम से जाना जाता है। इस रोग का प्रकोप सम्पूर्ण विश्व में दिखाई देता है। भारत में यह रोग वर्ष १९४३ में सर्वप्रथम दिखाई दिया। सीएमवी रोग का प्रकोप महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तामिलनाडु, गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तिसगढ़ व अन्य केला उत्पादक राज्यों में पाया जाता है। इस रोग का प्रकोप अन्य रोगों की तुलना में अधिक तीव्रता से होता है इसलिये इस रोग का प्रबन्धन महत्वपूर्ण है।

रोग के लक्षण:

सीमएमवी रोगग्रस्त पौधों के पत्तियों की नसों में पीली रेखाएँ बनती है व रोगग्रस्त हिस्से पर चमकदार धब्बे दिखते है। पत्ते पर धारियाँ मुख्य शिरा से निकलती है व

चित्र २१ : केले का कुकुम्बर मैजिक वाइरस रोग

पत्तों के दूसरे भाग पर पीले पट्टे दिखते है तथा उन पर गोल आकार जैसे धब्बे दिखते है। रोग की आगे की अवस्था में नये आनेवाले पत्ते सिकुड़ते है। रोग का प्रकोप होने पर पेड़ों का विकास नहीं होता है। निकृष्ट प्रति का गुच्छें का तना बनता है व उसका विकास नहीं होता इस कारण से सम्पूर्ण पेड़ बेकार हो जाता है। उष्ण वातावरण में रोग के लक्षण कम दिखते है इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि पेड़ सुधर गये है।

रोग का प्रसार :

सीएमवी रोग का प्रसार रोगग्रस्त पेड़ों पर उपयोग किये गये औजार, अंकुरित पौधे को काटने के लिये उपयोग किये गए हंसिये व रोगग्रस्त कन्दों के द्वारा होता है। इसके अलावा सीएमवी रोग के वैकल्पिक होस्ट बहुत ज्यादा होने से इसका पोषण लगभग ८०० वनस्पतियां पर होता है इसलिये रोग का प्रकोप केले के बगीचे पर आसानी से हो जाता है। रोग का प्रसार रस चूसनेवाले कीट से होता है व उनमें से प्रमुख कपास का माहू (*अफिस गॉसिपी*), *अफिस कासीव्हीरा, मायझर पर्सी, रोफेलासिझम माइडास,* मक्का फसल का माहू ऐसे अनेक कीट सहायक होते हैं।

रोग का प्रबन्धनः

सीएमवी रोग के पोषक वनस्पति व प्रसार करने वाले कीट वातावरण में बहुत संख्या में होने के कारण रोग का प्रबन्धन व कीट नियन्त्रण महत्वपूर्ण है।

i) सर्वप्रथम रोगग्रस्त पौधे की उखाड़कर जला देना या मिट्टी में गाड़ देना प्रभावकारी नियन्त्रण है।
ii) रोग रहित व वाइरस इन्डेक्सिंग किये हुए पौधों को ही लगाएँ।
iii) रोगग्रस्त परिसर के कन्दों का उपयोग नहीं करें।
iv) खेत के मेड़ों के पास व खेत के अंदर के खरपतवार पर नियन्त्रण करें।
iv) खेत के आसपास जंगली बेल, एबीरा, ककड़ी, करेला, खीरा, चिकनी तुरई, धारीदार तुरई, लौकी, करेला को नहीं लगाएँ।
v) बगीचे के पास कपास, मक्का, लोबिया, करेला, मिर्च, टमाटर, बैंगन आदि फसलों को भी नहीं लगाएँ।
vi) चूंकि रोग का प्रसार रस चूसनेवाले कीटों से होता हैं, अतः पौधे लगाने के पाँच से छः दिन के बाद कीटनाशक दवा का छिड़काव करें।

- क्लोरोपायरीफॉस ४५ मि.लि + एसीफेट १५ ग्राम + स्टिकर१५ मि.लि
- डाइमेथोएट ३० मि.लि + एसीफेट १५ ग्राम + स्टिकर १५ मि.लि
- एसिटामिप्रिड ६ ग्राम + एसीफेट १५ ग्राम + स्टिकर १५ मि.लि
- इमीड़ाक्लोप्रिड ६ मि.लि + एसीफेट १५ ग्राम + स्टिकर १५ मि.लि

१५ लिटर पानी में उक्त कीटनाशक दवाइओं को घोलकर एक दिन के अन्तर पर बारी बारी से छिड़काव करें।

४.१७. केले की कटाई :

केला का फूल बाहर निकलने के बाद कटाई योग्य होने के लिये साधारणतया १०० से ११० दिन का समय लगता है। केले की कटाई ७५ से ८५% पक जाने पर ही की जानी चाहिये। इसके पहले कटाई करने पर वजन कम मिलता है व आर्थिक नुकसान होता हैं। साधारणतया ३० से ३५ टन उत्पादन प्रति एकड़ प्राप्त हो जाता है। प्रति एकड ९४१०० रुपये उत्पादन खर्च आता है। प्रति एकड़ ३० टन उत्पादन प्राप्त होने पर प्रति टन रु. ७०००/- औसत भाव मिलने पर लगभग २, ८०, ००० रुपये का उत्पादन प्राप्त हो सकता है। पहली पेंढी व दूसरी पेंढी फसल मिलाकर ३० महिनों में तीन फसल ली जा सकती है।

चित्र २२ : कटाई उपरान्त तैयार केले के गुच्छे

५. केला का कटाई उपरान्त प्रबन्धन

केला की कटाई व कटाई उपरान्त प्रबन्धन से परिपक्व केले की गुणवत्ता, उत्पादकता, स्वाद व वितरण व्यवस्था में बहुत कम नुकसान होता है।

गुच्छों का चयन :

निर्यात के लिये गुच्छों में लगे हुए फल की गुणवत्ता के आधार पर चयन होता है। उत्कृष्ट, सशक्त, रोगमुक्त, फलों का आकार, गुणवत्ता व निर्यात के सभी मापदंड़ परिपूर्ण करने वाला व शीघ्र कटाई योग्य होना चाहिये।

अपरिपक्व केले की कटाई से फलों का स्वाद कम होता है तथा फल पकने में समानता नहीं होती साथ ही अधिक परिपक्वता से केले जल्दी गलने लगते हैं व छिलके तड़कने लगते हैं। नज़दीक के बाजार के लिये केलों को अधिक पकने दिया जाता है। केला परिपक्वता के मापदंड फलों के आकार, टेढ़ापन, मोटाई, लम्बाई व फूलकमल काटने के बाद की अवधि के मुताबिक तय किये जाते हैं। केले की कटाई, बाजार की मांग के अनुसार मध्यम परिपक्वता से पूर्ण परिपक्व स्थिति में की जाती है।

केला के गुच्छों की परिपक्वता के मापदंड:

- केला गुच्छों की आयु, केला फूल के बाहर निकलने के दिन से गिनी जाती है।
- गुच्छों के बनने के बाद गुच्छों को उनकी आयु गणना अनुसार प्लास्टिक बैग से ढंके हुए गुच्छों के ऊपर अलग अलग रंगो के टैग लगाएँ व उनका रिकार्ड रखें।
- केले के फलों का जैसे जैसे विकास होता जाता है वैसे फलों का आकार गोल होता जाता है।
- पूर्ण परिपक्व केले पर धार समाप्त हो जाती है व फल गोल होते हैं।
- निर्यात के लिये तनों पर लगे हुए गुच्छों में ऊपर से दूसरे गुच्छों के फल तीन चौथाई गोल हो गये हों व गुच्छों को तनों की आयु ११ से १२ सप्ताह हो गई हो तब गुच्छे तनों के साथ कटाई के लिये तैयार हैं ऐसा समझना चाहिये।
- स्थानीय बाजार के लिये गुच्छों के तनों की कटाई १०० से ११२ दिन तक की जा सकती है।

केला गुच्छों की कटाई, रख रखाव, पैकिंग व परिवहन :

- निर्यात के लिये केला के गुच्छों के तनों की कटाई सुबह या शाम के समय जब मौसम बहुत गर्म न हो, तब करें।

चित्र २३ : कटाई उपरान्त केले गुच्छे को सुरक्षित खेत से बाहर निकालना

- केला के फलों को कोई क्षति न हो इसका ध्यान रखें।
- प्रगतिशील देशों में केला की खेती बड़े प्रक्षेत्रों पर की जाती हैं। केबल द्वारा (रोपवे) केले के गुच्छों के तनों को बगीचे के बाहर निकालते हैं। हमारे देश में बगीचों का क्षेत्रफल कम होता है इसलिये खेत की मेड़ पर या बीच में संचालन केन्द्र बनाना आवश्यक है।
- पेड़ से गुच्छों का तना ऊपर से काट कर नरम फोम पर रखकर बाहर निकालें या दो लोगों के द्वारा उन्हे हुक पर लटकाकर पैकिंग स्थान तक ले जाएँ ताकि फलों को क्षति नहीं पहुंचे।
- पेड़ों के नीचे गुच्छों के तनों को लटकाकर उसमें से प्लास्टिक बैग, फलों के नीचे सूखे हुए फूल, तथा पैड एवं फनी के बीच लगाये हुए कुशन निकाल दें।
- केला के फूलों के गुच्छों को तने से धारदार चाकू से अच्छी तरह काट कर अलग करें।
- अलग किये हुए केले के गुच्छों को कुशन युक्त क्रेट में अथवा द्विस्तरीय ट्रॉली में केले के नोंक ऊपर रहें इस तरीके से चार से पाँच केले के गुच्छों को रखें व कटाई के दो घंटे के अन्दर पैकिंग हाउस में ले आएँ।
- दो गुच्छों के बीच कुशन रखें। दूरी अधिक हो तो परिवहन के लिये शीतयन्त्र लगे हुए वाहन का उपयोग करें।
- केले को अति उष्ण तापमान व सूर्यप्रकाश से बचाएँ।
- वाहन की गति व पहियों में हवा रास्ते की स्थिति के अनुसार रखें।

चित्र २४ : एक समान केले गुच्छों का चयन व पैंक के लिये तैयार करना।

पैक हाऊस प्रक्रिया :

- खेत से लाये हुए क्रेटस को पैक हाऊस में उतार कर रखें।
- केले को क्षति न हो व घाव नहीं हो पाए इसका ध्यान रखें।
- क्रेट से केले के गुच्छों को निकाल कर घाव वाले बाकें, तिरछें, खराब रंगवाले केलों को अलग कर दें।
- केले की धुलाई के लिये टंकी में फलों को सावधानी पूर्वक डालें। फल की लंबाई गोलाई नापकर पुष्टि कर लें।
- टंकी के पानी में केला फल को ठंडा करें, उस पर मिट्टी या फलों पर लगे हुए द्रवों को साफ करें। टंकी के पानी में एक लिटर पानी में एक ग्राम फिटकरी मिला दें।.
- दूसरी टंकी में सोडियम हाइपोक्लोराइड १०० पीपीएम के घोल में केला के फलों को कुछ मिनट रखकर उपचारित करें।
- तीसरी टंकी में ०.१ कार्बेन्डाजिम के घोल में केला के गुच्छों को डुबो लें। पुनः मापदंडों के अनुसार फलों का निरीक्षण कर लें।
- बाजार की मांग अथवा आयातकर्ता की मांग के अनुसार गुच्छों में केलों की संख्या रखें।
- छंटाई के बाद बहिष्कृत केलों को स्थानीय बाजार में भेज दें।

चित्र २५ : एक आकार व रंग के फलों को एक साथ पैकिंग हेतु तैयार करना

- स्वच्छ धोये हुए व छांटे हुए केलों को हवा से सुखाने के लिये कुशन वाले टेबल पर रखें।

श्रेणीकरण निरीक्षण:

ग्रेंडिग टेबलपर केले के गुच्छों का पुनः निरीक्षण कर कटे हुए, टेढ़े या बाजार में नापसंद किये जानेवाले कम लम्बाई व गोलाई वाले केले निकाल दें।

पैकिंग:

- स्थानीय बाजार के लिये कुशनवाले क्रेट्स में केला पैक करें।
- निर्यात के लिये जहाँ पर निर्यात किया जाना हो वहाँ के नियमों के मुताबिक कोरोगेटेड बॉक्स में प्लास्टिक की थैली रखकर केले के गुच्छों को जमा कर रखें।
- एक बॉक्स में १४ से १८.५ किलो केला भरें। केलों पर ट्रेडमार्क स्टिकर लगायें।
- प्लास्टिक थैली का मुंह बंद करते समय निर्वात पम्प की सहायता से हवा निकाल लें।
- बैग में इथेलिन शोषण के लिये पोटेशियम परमेंगनेट की पुड़िया रखने से फलों का हरापन बना रहेगा।
- नई तकनीक के अनुसार इथेलिन प्लास्टिक बैग से बाहर निकल जाये व ऑक्सीजन अन्दर न जाय, ऐसी थैलियाँ उपलब्ध हैं।
- बॉक्स पर फलों की संख्या, ब्रांड़, गुणवत्ता, ग्रेड उत्पादक किसान या कम्पनी का नाम, पता, देश, बॉक्स कैसे रखना इसकी जानकारी आदि छपी होनी चाहिये। फलों के पोषकतत्त्वों की मात्रा दर्शानेवाली तालिका देना चाहिये।
- शिपिंग लेबल पर निर्यातक, पैकर, प्रेषित की जानेवाले फल की किस्म, मूलदेश, वजन, आवश्यक तापमान, आर्द्रता व संचालन की सूचना होनी चाहिये।

चित्र २६ : निर्यात के लिये अलग-अलग ग्रेड एवं पैक

- निर्यात बॉक्स में भरे हुए केले को १४°से. तापमान पर ठंडा करें व कंटेनर में कार्टन को प्लेट पर जमाकर २० फिट या ४० फिट लम्बे कंटेनर में रखें। कंटेनर में तापमान १३.५°से. एवं आर्द्रता ९०% से कम नहीं जाये इसका ध्यान रखें व कंटेनर बंद रखें।.
- अच्छी पद्धति से उगाए गये केले के फलों को भारत में खास करके पंजाब, दिल्ली, जम्मू-काश्मीर में विक्री के लिए फलों को कोरोगेटेड बाक्स में या क्रेट में भेजा जाता है।
- अच्छी पद्धति से रायपनिंग चेंबर में १६-१८° सेल्सियस तापमान, ८५ से ९०% आद्रता तथा १००-४०० पीपीएम (०.०१%) इथिलीन वायु की मात्रा होनी चाहिए। इथिलीन केला को पकाने की प्रक्रिया को शुरु कर देता है परंतु पकाने की प्रक्रिया में भाग नहीं लेता है। इथिलीन से पकाया हुआ केला आरोग्य के लिए पोषक होता है।
- रायपनिंग चेंबर को २४ घंटों तक हवाबंद रखें। उसके पश्चात रायपनिंग चेंबर के इथइलीन गैस और केले में से उत्सर्जीत हुए कार्बनडाय आक्साइड को खुला छोड़े तथा उसके बाद रायपनिंग चेंबर अगले ३ से ४ दिनों के लिए तापमान १८° सेल्सियस से १५° सेल्सियस तक कम करके रखें।
- रायपनिंग चेंबर से उत्सर्जीत कार्बनडाय आक्साइड गैस की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक होने पर केला पकाने की क्रिया रुक जाती है इसलिए रायपनिंग चेंबर की हवा समय समय पर बदलें।
- केला रायपनिंग चेंबर के दरवाजे खोल दे। पहले २४ घंटों में हर ६ घंटे २० मिनिट तक गैस बाहर निकाले। इसके लिए भीतर की हवा बाहर फेकने वाले पंखे का इस्तेमाल करें। उसके बाद केला स्थानिक बाजार में बिक्री के लिए भेजे।
- उपरोक्त प्रक्रिया लगातार ४ दिनों के लिए करे जिससे केला एक जैसे ही रंग में पके।
- केला एक जैसे पीले तथा उसकी नोक व सिरे हरे हों स्थानीय बाजार एवं निर्यात के लिये उचित है।

विपणन व स्वयं की पहचान निर्मित करना :

भारत के ताज़ा फलों के लिये वैश्विक बाजार के द्वार खुले हैं। जापान, अमेरिका ने भारत को आम निर्यात के लिये अनुमति दी है।

विश्व में केला ब्रांडनेम से बिक्रित होता है। इसके लिये सर्वोत्तम गुणवत्ता व उत्तम दर्जे वाले केले की मांग देश में व देश के बाहर है। भारत देश में खास कर के महाराष्ट्र राज्य में उत्पादित केले की माँग नज़दीक के देश जैसे ईरान, ईराक, तेहरान, दुबई, मस्कट, जॉर्डन जैसे देशों में काफी है। इन सभी देशों में विश्व में डोल, डेलमॉल्ट, चिकिता, फिप्स जैसी कम्पनियाँ विगत ५० वर्षों से केले का विपणन कर रही हैं। उनके ब्रांड पर लोगों का विश्वास है ऐसी ब्रांड इमेज निर्माण करना आवश्यक है।

जैन इरिगेशन ने विगत २० वर्षों से केला फसल के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम किया है। केला उत्पादन से निर्यात तक, सम्पूर्ण मार्गदर्शन कम्पनी ने हजारों कृषकों को दिया है। इसके लिए अनेक कम्पनियाँ भारत में काम करने के लिये तैयार हैं। बदलती परिस्थिति व तकनीक का भरपूर लाभ लेने के लिये महाराष्ट्र के केला उत्पादकों को एक होकर काम करने की आवश्यकता है। केले के दिन स्वर्णिम है इसमें कोई शंका नहीं।

चित्र २७ : विपणन के लिये तैयार उच्च गुणवत्तायुक्त फल

केला निर्यात के लिए विविध प्रक्रियाएँ :

बगीचे का चयन

▼

कटाई के पूर्व की प्रक्रिया

▼

७५% परिपक्व अवस्था के गुच्छों का चयन व कटाई

▼

स्ट्रेचर या सावधानीपूर्वक पैकिंगवाली जगह तक परिवहन

▼

गुच्छों को अलग करना

▼

फिंगर निकालना व डंडा काटना

▼

टंकी संख्या १ व २ में चिकट व धूल साफ करना

▼

टंकी संख्या ३ व ४ में फिटकरी व फफूंदनाशक घोल से उपचार

▼

केले को सुखाएँ, कोरोगेटेड बॉक्स में फूडग्रेड प्लास्टिक बैग में हवाबंद करें

▼

वजन करें व कोरोगेटेड बॉक्स शीतगृह में पूर्ण रुप से ठंडा करके तापमान १३°से. तक लाना व ठंडे कंटेनर में बॉक्स रखना।

▼

बाजार में कन्टेनर भेजना

▼

बाजार के स्थान पर केलों को २०-२२° से. तापमान पर पकने के लिये राइपनिंग चैंबर में रखना

▼

राइपनिंग चैम्बर में १००-१००० पीपीएम इथिलिन गैस २४ घंटे छोड़ना

▼

तापमान १३° से. तक लाना

▼

तीसरे स्तर का रंग होते ही केलों को विक्रय के लिये बाजार में भेजना।

६. जैविक केला उत्पादन

६.१. प्रस्तावना :

कृषि विकास में हरितक्रांति के नाम पर नये नये प्रयोग खेती में होने लगे। उनमें प्रमुखतया संकरित बीज, जहरीले कीटनाशक, खरपतवारनाशक, रासायनिक खाद इत्यादि के उपयोग में असीमित वृध्दि हुई। इस कारण जमीन, पानी व फसल जहरीले पदार्थों से भर गये और प्रदूषण बढ़ गया। बाद में पूरे विश्व में केला की खेती के लिये उपयुक्त तकनीक के बारे में अनुसंधान का कार्य शुरु हुआ। इस प्रयास में जैविक खेती की संकल्पना सामने आई। आज पूरे विश्व में यह तकनीक आगे बढ़ कर रही है।

६.२. जैविक खेती :

कृषि रासायनिक खाद व रसायनों का खेती में उपयोग न करते हुए प्राकृतिक व जैविक पदार्थो का पोषक तत्व के रुप में उपयोग करने व फसल लेने वाली इस पध्दति में जमीन की उर्वरकता को कायम रखते हुए फसल चक्र, पशुओं के मलमूत्र से प्राप्त खाद का उपयोग, हरी खाद की फसल लेकर जमीन में गाड़ना, जीवाणु खाद का उपयोग, रोग व कीट नियन्त्रण के लिये तथा एकीकृत कीट एवं रोग प्रबन्धन के उपायों का नियोजन कर परोपजीवी कीट, फंफूद जीवाणु का फफूंद एवं कीट नाशक के रुप में उपयोग करना आदि प्रमुख बातों पर अमल करना है।

६.३. जैविक खेती की प्रमुख विशेषताएँ :

i) जमीन की भौतिक, रासायनिक व जैविक उत्पादकता स्थिर रखी जाती है।

ii) जमीन, फसल, पानी व औजारों का रासायनिक प्रदूषण से संरक्षण करके जहरीले घटकों से दूर रखा जाता है।

iii) स्थानीय किस्मों को प्राथमिकता देना या नई सुधारित किस्मों में से चयन पध्दति (Selection) से नई प्रजाति विकसित करना।

iv) फसल चक्र अपनाना (केला फसल के पूर्व दलहन वर्ग की फसल लेना)

v) हरी खाद के लिये हरी फसल को जमीन में गाड़ना।

vi) नाइट्रोजन, फॉस्फोरस उपलब्ध करने वाले व जैविक पदार्थो के विघटन करने वाले जीवाणु संवर्धनों का उपयोग करना।

vii) कन्द या पौधों को जीवाणु खाद से व गोमूत्र से उपचारित करना।

viii) केला पेड़ से निकलने वाले पत्तों, तनों, फूल, अंकुरित पौधों आदि से कम्पोस्ट खाद बनाकर उनका उपयोग करना।

ix) केले की फसल में अंतर्वर्तीय फसल के लिये दालवाली फसल या सब्जियों की फसल लेना जिससे कीट व रोग मुख्य फसल से अंतर्वर्तीय फसल की ओर आकर्षित होते हैं।

x) कीट व रोग प्रबन्धन के लिये परोपजीवी कीटों का उपयोग, जीवाणु व फफूंद का उपयोग करना, यानी जैविक पध्दति से कीट व रोग प्रबन्धन।

xi) जैविक रसायन (वनस्पतिजन्य या प्राणियों से प्राप्त जैविक पदार्थ) का कीट नाशक के रुप में उपयोग करना।

xii) विविध अखाद्य पदार्थो का खाद के रुप में उपयोग करना।

xiii) वनस्पति अर्क, समुद्री घास का संजीवन के रुप में उपयोग करना।

xiv) पत्ते, कूड़ा करकट, घास आदि स्थानिक आच्छादन के लिये उपयोग करना।

xv) निर्धारित व नियन्त्रित सिंचन पध्दति - टपक सिंचाई का उपयोग करना।

xvi) प्राकृतिक संसाधन जैसे धूप, प्रकाश, हवा आदि का खेती के लिये उपयोग करना।

६.४. जैविक केला उत्पादन के क्रमानुसार कार्य:

जैविक फसलों की तरह केला फसल को जैविक खेती पध्दति से लगाना अर्थात मूल कृषि पध्दति को अपनाया जाना, कृषि व्यवसाय दीर्घकाल तक सफलता से चले, जमीन की उत्पादकता कायम रहे, इस उद्देश्य से कृषि पद्धति में परिवर्तन करना आवश्यक है। पर्यावरण का संतुलन कायम रखने को भी कृषि पद्धति में समाविष्ट करना चाहिये।

कृषक का मानसिक रुप से दृढ़ निश्चय:

किसान को यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि केला फसल का उत्पादन जैविक पध्दति से ही करना है।

जमीन का चयन:

जिस भूमि में विगत कई वर्षों से रसायनों का कम से कम उपयोग हुआ हो या नया खेत हो या अधिक से अधिक जैविक खाद का उपयोग हुआ हो, ऐसी भूमि का चयन करें।

जमीन की पूर्व तैयारी :

बैल चलित उपकरणों से जमीन की गहरी एवं हल्की जुताई करनी चाहिये। बड़े और भारी औजारों का उपयोग नहीं करना चाहिये। केला फसल के पहले हरी

खाद ढेंचा या सनई लगा कर खेत में गाड़ दें। गोबर की खाद प्रति एकड़ ३० टन तक जमीन में मिला दें। गोबर की खाद को ट्रायकोडर्मा विरिडी से उपचारित करना चाहिए। (१ किलो ट्रायकोडमा विरिडी /१० में. टन गोबर की खाद)

उपयुक्त किस्म का चयन :

जैविक खेती पध्दति के अनुकूल परिणाम देने वाली केले की किस्म का संशोधन शुरु है। आज की परिस्थिति में के.एम-५, ग्रैन्डनैन, ब्रिटिश होन्डुरस से चयनित फिया-१७, जैसी विविध किस्में संशोधन प्रक्रिया में हैं।

बीज प्रक्रिया :

कन्द या पौधों को अजोटोबैक्टर और पीएसबी जीवाणु संवर्धन से व गोमूत्र और गोबर की खाद से उपचारित करें।

रोपाई :

कन्द रोपाई करते समय ट्राइकोडर्मा विरिडी उपचारित गोबर की खाद या प्रेसमड का उपयोग करें। साथ ही नीम की खली का उपयोग भी करें।

सिंचाई :

केले की फसल को आवश्यकतानुसार निर्धारित दर से व अंतराल से टपक सिंचाई से पानी दें।

अन्तर्वर्तीय कार्य :

i) हरी खाद की फसल को जमीन में दबायें।

ii) निराई गुड़ाई

iii) फसल पर मिट्टी चढ़ाना।

iv) फसल को पत्तों से आच्छादित करना।

v) अन्य कार्य वैसे ही करना चाहिए जैसे व्यापारिक स्तर की खेती में करते हैं।

खाद का उपयोग:

रोपाई के पूर्व मिट्टी में गोबर की खाद, प्रेसमड या कम्पोस्ट खाद का उपयोग करें। हरी खाद की फसल उगाकर जमीन में दबाएँ। नीम की खली, करंज खली, अरंडी खली, महुआ खली का पूरक खाद के रुप में उपयोग करें। हड्डियों का चूरा, मछली खाद का उपयोग, गोमूत्र व प्रेसमड, केंचुआ खाद, जीवाणु खाद का भी उपयोग करना चाहिए। खाद की मात्रा फसल की आवश्यकतानुसार व मिट्टी परिक्षण के आधार पर निश्चित करें।

तालिका १४ : जैविक खाद में पोषक तत्वों की उपलब्धता

अ.न.	खाद का प्रकार	पोषक तत्वों की मात्रा		
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
अ) प्राणी जगत से				
०१	पशु अपशिष्ट गोबर (ताजी)	०.३ - ०.४	०.१-०.२	०.१-०.३
०२	बकरी भेंड़ अपशिष्ट (ताजी)	०.५ - ०.७	०.४-०.६	०.३-१.०
०३	कम्पोस्ट खाद (ताजी)	१.० - १.६	०.८-१.२	०.२-०.६
०४	मुर्गी की खाद	१.० - १.८	१.४-१.८	०.८-०.९
०५	पशुओं का मूत्र	०.९ - १.२	कम	०.५-१.०
०६	भेंड़-बकरी मूत्र	१.५ - १.७	कम	१.८-२.०
ब) राख :				
०१	कोयला राख	०.७३	०.४५	०.५३
०२	घर से निकली राख	०.५ - १.९	१.६ - ४.२	२.३-१२.०
०३	लकड़ी राख	०.१ - ०.२	०.८ - ५.९	१.५-३६.०
स) फार्म, फैक्टरी व अन्य कम्पोस्ट :				
०१	ग्रामीण कम्पोस्ट	०.५ - १.०	०.४ - ०.८	०.८ - १.२
०२	शहरी कम्पोस्ट	०.७ - २.०	०.९ - ३.०	१.० - २.०
०३	गोबर की खाद	०.४ - १.५	०.३ - ०.९	०.३ - १.९
०४	प्रेसमड	१.० - १.५	४.० - ५.०	२.० - ७.०
द) अवशेष से बनी खाद :				
०१	चावल का भूसा	०.३ - ०.५	०.२ - ०.५	०.३ - ०.५
०२	मूंगफली के छिलके	१.६ - १.८	०.३ - ०.५	१.१ - १.७

तालिका १५ : हरीखाद में उपलब्ध पोषक तत्व

अ.नं.	खाद का प्रकार	हरीखाद में उपलब्ध पोषक तत्व		
		किलो/हे	नाइट्रोजन	उपलब्ध नाइट्रोजन (किलो/हेक्टर)
०१	सनई	२१३००	०.४३	९०
०२	ढैंचा	२००००	०.४२	८४
०३	लोबिया	१५०००	०.४९	७४
०४	मूंग	८०००	०.५३	४२
०५	बरसीम	१५५००	०.४३	६७

तालिका १६ : तेल की खली में उपलब्ध पोषकतत्व

अ.न.	खली	पोषकतत्व		
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
अ) अखाद्य तेल की खली				
०१	नीम की खली	५.२	१.०	१.४
०२	अरंड़ी की खली	४.३	१.८	१.३
०३	कपास की खली	३.९	१.८	१.६
०४	करंज की खली	३.९	०.९	१.२
ब) खाद्य तेल से खली				
०१	नारियल खली	३.०	१.९	१.८
०२	मुंगफली की खली	७.३	१.५	२.२
०३	कुसुम की खली	७.९	२.२	१.९
०४	तिल की खली	६.२	२.०	१.२

केंचुआ खाद :

केले के लिये केंचुआ खाद उपयुक्त जैविक खाद है। फसल ४-५ माह की हो तब प्रतिपेड़ ५०० ग्राम केंचुआ खाद दें। इससे जमीन की संरचना में सुधार हो जायेगा और पोषकतत्वों की पूर्ति भी हो जाएगी।

चित्र २८ : केंचुआ खाद तैयार करना

जैविक खाद :

विविध सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, फफूंद, काई, वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। पीएसबी, फॉस्फोरस को फसल को उपलब्ध कराने में सहायक होता है कुछ जीव जैविक पदार्थों को विघटित कर सड़ाने की प्रक्रिया को गति देते हैं और कार्बनिक पदार्थों को खाद के रुप में बदलतें हैं तथा कुछ सूक्ष्मजीव कीट नियन्त्रण करते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण करनेवाले जीव:

i) रायजोबियम: दलहनी फसलों के लिए।

ii) अजोटोवैक्टर एवं अजोस्पिरिलम: दलहनी के अतिरिक्त अन्य फसलों के लिए।

iii) नीली हरी काई एवं अजोला: उन फसलों के लिए जिनमें पानी की आवश्यकता अधिक होती है।

iv) पी.एस. बी. : फास्फोरस को घुलनशील करने वाला जीव

v) वनस्पति खाद बनाने वाले सूक्ष्मजीव: यह जीवाणु, खमीर एवं फफूँद का मिश्रण होता है।

vi) जैविक फफूंद नाशक : ट्रायकोडर्मा।

एकीकृत कीट प्रबन्धन

i) पत्तों के ऊपर टिपके : जमीन में कैल्शियम, मैग्नीशियम, जैविक ह्यूमस की मात्रा बढ़ने पर जमीन व फसल पर इस रोग का प्रकोप नहीं होता है।

ii) सूत्रकृमि (निमेटोड) प्रबन्धनः

- जिस मिट्टी में पानी से कटाव हो जाता है उसमें केले की फसल नहीं लें।
- अंकुरित पौधे की कटाई में विलम्ब करें।
- गेंदा फूल की फसल को ट्रैप फसल के रुप में लें।
- सूत्रकृमि रोगरहित टिश्यूकल्चर पौधे लगायें।

ii) फ्युजेरियम विल्ट नियन्त्रण

- क्षारीय पीएच वाली जमीन में केला फसल लेना।
- अधिक उपजाऊ जमीन में केले की फसल लेना जिसमें जलनिकास की सुविधा हो उसका चयन करना।
- पत्तों के ऊपर लगनेवाली बिमारियों की पहचान एवं प्रबन्धन को फसल प्रबन्धन के अन्य कार्यों से अलग नहीं समझना चाहिए।

फसल कटाई :

केले के फलों के गुच्छों वाले तनों कों अन्य तनों के साथ न रखें। उसका भण्डारण एवं परिवहन भी अलग से करें। फलों में रसायनों के अवशेष नहीं होने की पुष्टि करें। विशेषतया नाइट्रेट की मात्रा की जांच करें।

रिकार्ड :

जमीन, जमीन में दी गई खाद, दवाएं, मजदूरी कार्य आदि के बारे में रिकार्ड रखें।

जैविक प्रमाणपत्र प्राप्त करनाः

फसल उत्पादन जैविक मापदण्डों के अनुरुप हुआ है या नहीं, इसकी पुष्टि के लिये विशेष संस्थाएँ जिनको वैश्विक मान्यता प्राप्त है प्रत्यक्ष निरीक्षण कर प्रमाणपत्र देती हैं। किसी ऐसी संस्था से निरीक्षण करवाकर प्रमाणीकरण करवाएँ

प्रमाणीकरण :

आपकी खेती व फसल जैविक है इसका प्रमाणपत्र विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त हो सकता है। आयएफओएएम इस विश्वस्तरीय संस्था के द्वारा प्रमाणित नियमों के अनुसार स्कॉल (जर्मनी), -इकोसर्ट (युरोप),- एपिडा (भारत) आदि संस्थाएं जैविक खेती का प्रमाणपत्र जारी करती हैं। इसके लिये निर्धारित शुल्क लिया जाता है।

७. पारम्परिक एंव टिश्यूकल्चर पद्धति का तुलनात्मक अर्थशास्त्र

पारम्परिक कन्द एवं टिश्युकल्चर पौधों द्वारा की गई केला की खेती का तुलनात्मक अर्थशास्त्र (एकड़)

अ.नं	विवरण	पारम्परिक कन्दों से फसल लेना	टिश्यूकल्चर पौधों से फसल लेना
	पौधों के बीच की दूरी	५X५ फिट	५X६ फिट
	पौधों की संख्या	१७४२	१४५२
१	जमीन की तैय्यारी (२ बार हल चलाना एवं ३ हैरो चलाना)	५८००	५८००
२	गोबर की खाद (७.५ ट्राली/एकड़) रु. २००० प्रति ट्रॉली.	१५०००	१५०००
३	गोबर खाद जमीन में डालना	१५००	१५००
४	गड्ढों को चिन्हित करना	५००	५००
५	टपक सिंचाई संयन्त्र (५ वर्ष) एक वर्ष के लिए	५०००	५०००
६	कन्द / टिश्यूकल्चर पौध	३४८४	१८५८५
७	लगाने का खर्च	१७४२	१४५०
८	रासायनिक खाद	१००३३	२१७००
९	सूक्ष्म पोषक तत्त्व	११३२	१८८७
१०	द्वितीयक पोषक तत्त्व	१७००	२५५०
११	कीट एवं फफूँदनाशक	५००	१५००
१२	वृद्धिवर्धक एवं हार्मोन्स	२५०	५००
१३	अंकुरित पौधों की कटाई	१०००	१०००
१४	निराई-गुड़ाई	१५००	१५००
१५	मिट्टी चढ़ाना	३०००	३०००
१६	सिंचाई खर्च	१५००	१५००
१७	गुच्छों को ढंकना व अन्य खर्च	२०००	३०००
१८	कटाई व परिवहन खर्च	९०००	९०००
कुल खर्च (रुपया)		**६४६४१**	**९४९७२**
प्रति पेड़ कुल खर्च (रूपया)		**३७.१०**	**६५.४०**

टिश्युकल्चर तथा पारम्परिक पद्धति से केला लगाने की तुलना व अर्थशास्त्र (प्रति एकड़)

अ.नं.	विवरण	पारम्परिक कन्दों से फसल लेना	टिश्यूकल्चर पौधों से फसल लेना
१	कुल पेड़ों की प्रति एकड़ संख्या	१७४२	१४५२
२	प्रति पौधा उत्पादन खर्च (₹)	३७.१०	६५.४०
३	प्रति एकड़ उत्पादन खर्च (₹)	६४६४१	९४९७२
४	उत्पादन देनेवाले कुल पेड़	१५००	१३५०
५	प्रति पेड़ उत्पादन (किलो) (₹)	१५	२५
६	कुल उत्पादन (में. टन)	२२.५००	३३.७५०
७	कुल आय (औसत य ७०००/-प्रति टन)	१५७५००.००	२३६२५०.००
८	कुल लाभ (₹)	९२८५९.००	१४१२७८.००
	प्रथम पेड़ी फसल		
१	उत्पादन खर्च प्रति पेड़ (₹)	१७.००	३०.००
२	कुलखर्च (₹)	२९६१४.००	४०५००.००
३	औसत उत्पादन (में.टन/एकड़)	२२.५० टन	२७.०० टन
४	कुल आय (६०००/टन)	१३५०००.००	१६२०००.००
५	कुल लाभ (₹)	१०५३८६.००	१२१५००.००
	द्वितीय पेड़ी की फसल		
१	उत्पादन खर्च प्रति पेड़ (₹)	-	३०.००
२	कुलखर्च (₹)	-	४०५००.००
३	प्रति एकड़ उत्पादन में. टन प्रति एकड़	-	२४.००० टन
४	कुल उत्पादन (औसत भाव ६००० प्रति टन)	-	१४४००.००
५	कुल लाभ (₹)	-	१०३५००.००

फसल में होनेवाले खर्च एवं आय की तुलना (य/एकड़)

विवरण	खर्च (₹)		कुल आय (₹)		शुध्द लाभ (₹)	
	कन्द	टिश्यू	कन्द	टिश्यू	कन्द	टिश्यू
मुख्य फसल	६४६४१	९४९७२	१५७५००	२३६२५०	९२८५९	१४१२७८
प्रथम पेड़ी फसल	२९६१४	४०५००	१३५०००	१६२०००	१०५३८६	१२१५००
दूसरी पेड़ी फसल	नही आती।	४०५००	-	१४४०००	-	१०३५००
कुल	९४२५५	१७५९७२	२९२५००	५४२२५०	१९८२४५	३६६२७८

८. केला : अनेक व्याधियों की एक अचूक औषधि!

आपको यदि शक्ति शिखर पर जल्दी पताका फहरानी है तो केला जैसी उत्तम खुराक दूसरी कोई नहीं है। इसमें आसानी से अवशोषित होनेवाली तीन प्रकार की शर्करा सुक्रोज, फ्रुक्टोज व ग्लूकोज होती है। इसके साथ ही रेशायुक्त तत्व भी होते हैं। केला स्वादिष्ट व टिकाऊ फल है व शीघ्र शक्तिदायक है

संशोधनों से यह सिद्ध हो गया है कि सिर्फ दो केले से १० मिनट तक किये जाने वाली कष्टप्रद कसरत के लिये ऊर्जा प्राप्त होती है, इसलिये विश्व के सभी व्यायाम प्रेमी लोगों को केला फल पसंद होता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। केला शक्तिवर्धक है व स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है साथ ही बहुत सी बीमारियों व उनके लक्षणों को दूर करने व उनको रोकने में सहायक हैं। इसलिए प्रतिदिन के खाने में इसका समावेश करना चाहिये।

रक्तक्षय: केला में जैविक रूप में लोह तत्व उपलब्ध होने से रक्त के लाल कणों में वृद्धि होती है। रक्तक्षय समूल नष्ट करने में सहायक होता है।

रक्तदाब: इस अनोखे फल में पोटेशियम की मात्रा भरपूर होती है व सोडियम की बहुत कम मात्रा होती है, इसलिये रक्तदाब के स्तर को सामान्य रखने में केला काफी सहायक है।

यू. एस. फूड एवं ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (एफडीए) ने, केला के सेवन से उच्च रक्तदाब व हृदयविकार का झटका आने की संभावना कम होती है, ऐसा दावा किया है।

बुद्धिमानांक: टविकेनहैम (मिडिलसेक्स) में एक विद्यालय के २०० विद्यार्थियों के बुद्धिमानांक को बढ़ाने के प्रयास में उनको नाश्ते व दोपहर के भोजन में केला खाने को दिया गया।

संशोधन से प्राप्त परिणामों ने दर्शाया कि पोटेशियम से प्रचुर इस फल के सेवन से विद्यार्थी अधिक दक्ष हुए और उन्हें सीखने में आसानी हुई।

कब्ज: केला में तंतुमय तत्व (फाइबर) रेशे अधिक होने से आंतों को कार्य करने में मदद मिलती है व कोई भी रेचक न लेते हुए कब्ज दूर होता है।

उदासीनताः माइन्ड संस्था द्वारा किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उदासीनता से ग्रस्त लोगों द्वारा केला खाने पर उन्हें अच्छा महसूस हुआ। इसका कारण यह है कि केला में ट्रिप्टोफान होता है जो एक आवश्यक अमिनो अम्ल है जिससे हमारा शरीर इसको सेरोटोनिन में परिवर्तित कर देता है। इससे आराम मिलता है, मन प्रफुल्लित होता है व आनंद की अनुभूति होती है।

संवेदन शून्यताः केले को दूध में डाल कर थोडा शहद मिला कर पीने से संवेदनशून्यता शीघ्र दूर हो जाती है। केला से पेट भर जाता है व शहद की मदद से रक्त में हुई शर्करा की कमी दूर हो जाती है। दूध से पेट की क्रिया सहज हो जाती है व शरीर यंत्रणा पुनः कार्यशील हो जाती है।

मज्जा तंतु (छाती जलन): केला एक प्राकृतिक अम्लतत्व नाशक प्रभाव शरीर में रखता है इसलिए यदि आप को छाती जलन की समस्या है तो इसको दूर करने के लिए एक केला खाएँ।

दिमाग का भारीपन व काम का तनावः आस्ट्रेलिया की मानसशास्त्र संस्था में किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि काम से होने वाले तनाव के कारण व्यक्ति चॉकलेट एवं चटपटे पदार्थ खाने लगता है। चिकित्सालय के ५००० मरीजों के अध्ययन से संशोधनकर्ताओं ने यह पाया कि तनावपूर्ण स्थिति में काम करनेवाले व्यक्तियों के अधिक मोटे व स्थूल होने की संभावना होती है। इस अध्ययन ने यह भी निष्कर्ष दिया कि तनाव ग्रस्त स्थिति में अधिक खाने की इच्छा टालने व अपने रक्त में शर्करा की मात्रा नियन्त्रित रखने के लिये दो घंटे में उच्च कार्बोहाइड्रेट युक्त केला का नाश्ते के रूप में सेवन करें।

आंतों की मरोड़ः केला अन्दर से बहुत नरम होता है। इसलिये आंतों के रोग के लिये पच्य आहार में समाविष्ट किया जाता है। यह एकमात्र फल है जो कि आंतों के पुराने विकार होनेपर भी खाया जा सकता है। अति अम्ल की स्थिति में भी सुधार होता है व पाचन क्रिया में भी मदद करता है।

तापमान नियन्त्रणः गर्भवती महिलाओं के शारीरिक तापमान व भावनात्मक संत्रास को कम करने के लिये केला जैसे ठंडे फल उपयुक्त रहते हैं, ऐसी विचारधारा है। थाईलैंड में गर्भवती महिलायें केले का सेवन करती हैं इससे जन्म लेनेवाले बालक ठंडे तापमान की प्रकृति से ही जन्म लेते हैं।

तालिका १ : केला में पोषक तत्वों की मात्रा

मात्रा (प्रतिशत)		
घटक	**पका हुआ**	**कच्चा**
नमी	६०.६-७९.८	६०.४-७२.४
प्रोटीन	०.४-१.७	१.०-१.८
क्षरित ग्लुकोज	३.६-२४.६	०.१-०.२
अक्षरित ग्लुकोज	०.०-१४.६	०.५
अन्य कार्बोहाइड्रेट व चर्बी इत्यादि	०.१-१६.४	२४.५-३६.७
राख	०.७-१.६	०.९-१.३
ऊर्जामान	११६ केलोरीज/१०० ग्राम	६७.१३७ केलोरीज/१०० ग्राम

तालिका २ : पांच मुख्य फलों के पोषण तत्व का तुलनात्मक विश्लेषण

फल	नमी %	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	रेशा (ग्राम)	वसा (ग्राम)	(खनिज) (ग्राम)	ऊर्जामान (केलोरीज/ ग्राम)
सेब	८७.६	१३.४	०.२	१.०	०.५	०.३	५९
केला	७०.१	२७.२	१.२	०.४	०.३	०.८	११६
अंगूर	७९.२	१६.५	०.५	२.९	०.३	०.६	७१
अमरुद	८१.७	११.२	०.९	५.२	०.३	०.७	५१
पपीता	९०.८	७.२	०.६	०.८	०.१	०.५	३२

१. केला में सेब की तुलना में ६ गुना प्रोटीन, २ गुना कार्बोहाइड्रेट, तीन गुना फास्फोरस, विटामिन ए व लौह की मात्रा पाँच गुना अधिक होती है।

२. केला में उपस्थित घटक पदार्थो का अंश (मि.ग्रा./१००ग्राम)- पोटैशियम ८८.० कैल्शियम १७.०, जिंक ०.१५, विटामिन सी. ७.०।

टिश्युकल्चर केला - किसानों द्वारा सफलता की कहानी

किसान की तस्वीर		
किसान का नाम	टेनु डोंगर बोरोले	विश्वजीत सिंग पुरावत
पता	ग्राम न्हावी, तह.यावल, जि. जलगाँव (महाराष्ट्र)	गागली साततलइ, जि. धार (म.प्र.)
फोन नं.	०९९७५३१३०६१	०९५८७७७७६६३
मिट्टी का प्रकार	मध्यम दोमट	पीली हल्की दोमट
केला अंतर्गत क्षेत्र	४९ एकड़	३१ एकड़
रोपाई की तिथि	५ जून २०१३	१० नवम्बर, २०१३
पौध अंतर	६' x ६'	६' x ५'
ड्रिप का प्रकार	जे-टर्बो एक्यूरा १२ मि.मि./४ एल.पी.एच./५० सेमी./क्लास २	जैन इनलाईन १६ मि.मि./ २.४ एल.पी.एच.
टिश्युकल्चर पौध की लागत/एकड़	₹ १५,७३०/-	₹ २०,३३०/-
उत्पादन लागत/एकड़	₹ ८९,७७०/-	₹ ७२,२००/-
ड्रिप की लागत/एकड़/वर्ष (५ वर्ष आयु अनुसार)	₹ ७,०००/-	₹ १२,०००/-
ड्रिप का रखरखाव खर्च/एकड़	₹ १,५००/-	₹ ५००/-
कुल उत्पादन लागत/ एकड़ (ड्रिप सहित)	₹ १,१४,०००/-	₹ १,०४,८३०/-
उत्पादन/एकड़ (मुख्य फसल)	३६.९ टन/एकड़	३६.३ टन/एकड़
बिक्री दर	₹ ९००/- प्रति क्विंटल	₹ १२००/- प्रति क्विंटल
कुल आय/प्रति एकड़	₹ ३,३२,१००/-	₹ ४,३५,६००/-
शुद्ध लाभ/प्रति एकड़	₹ २,१८,१००/-	₹ ३,३०,७७०/-
लागत लाभ अनुपात	१ : २.००	१ : ३.१५

मनोजभाई मुराजीभाई पटेल	गौतम पोद्दार	राजेंद्र टाँक
पो.राजपारदी, तह.झगड़िया, जि. भरूच (गुजरात)	ग्राम भडया, तह. निचलौल, जि. महाराजगंज (उ.प्र.)	ग्राम अरसनारा, जि.दुर्ग, (छ.ग.)
०९४२६२८८५४०	०९९१९००१०६१	०९९७७३१७७०
दोमट	दोमट	काली चिकनी दोमट
२ एकड़	४० एकड़	१४ एकड़
जून २०१३	२५ जुलाई २०१३	२० जून २०१३
६' x ६'	७' x ५'	६' x ५'
जैन इनलाईन १६ मि.मि.,/ ४.० एल.पी.एच. / ६० सेमी.	जे-टर्बो एक्यूरा १६ मि.मि./ ४ एल.पी.एच./५० सेमी./क्लास २	जे-टर्बो एक्यूरा १६ मि.मि./२.४ एल.पी.एच./३० सेमी./क्लास २
₹ १६,९४०/-	₹ २१,१४८/-	₹ २१,७५०/-
₹ ४७,०००/-	₹ ८३,०००/-	₹ ८०,०००/-
₹ ८,०००/-	₹ १०,०००/-	₹ १५,०००/-
₹ १,०००/-	₹ १,२००/-	₹ १,२००/-
₹ ७२,९४०/-	₹ १,१५,३४८/-	₹ १,१७,९५०/-
४६.८ टन/एकड़	३१.२ टन/एकड़	३२ टन/एकड़
₹ ९००/- प्रति क्विंटल	₹ १,३००/- प्रति क्विंटल	₹ ९००/- प्रति क्विंटल
₹ ४,२१,२००/-	₹ ४,०५,६००/-	₹ २,८८,०००/-
₹ ३,४८,२६०/-	₹ २,९०,२५२/-	₹ १,७०,०५०/-
१ : ४.७७	१ : २.५२	१ : १.४४

जैन टिश्यूकल्चर स्ट्रॉबेरी के पौधे

- स्ट्रॉबेरी के टिश्यूकल्चर पौधे का निर्माण करनेवाली देश की एकमात्र कंपनी
- स्ट्रॉबेरी का विदेश से पौधा आयात करने की अब जरूरत नहीं
- विषाणु एवं फफूँद रोग रहित पौधो का परीक्षण एवं हार्डनिंग पश्चात वितरण
- तेज वृद्धि एवं कम समय में ही फलत प्रारंभ
- आकर्षक रंग वाले गुणवत्तायुक्त फल
- कामारोजा एवं स्वीट चार्ली दोनो प्रजातियों के पौधे उपलब्ध

* शर्तें लागू

जैन ड्रिप®
प्रति बूँद, फसल भरपूर!

जैन™
जन इरिगशन सिस्टम्स् लि.
छोटे छोटे कदम. आसमाँ छूने का दम.

जैन™ टिश्यूकल्चर
अधिक उत्पादन – अधिकतम लाभ।

बुकिंग के लिए संपर्क करें: जलगाँव ९७०४९५५३१७, ९४२२७७६७१८, ९४२२७७४९८१,
नंदुरबार: ९४२२७७४९७५, पुणे: ९४२२७७४९२३, अहमदनगर: ९४०३६९५९०९, नासिक: ९४०७७०६२५,
सोलापुर: ९४२२७७४९३२, ९४२२७७६८२६, सांगली: ९४०३०८०१७२, अमरावती: ९४०३०८०१३४.

जैन टिश्यूकल्चर अनार के पौधे

मा. शिवाजीराव दुशिंग, मु.पो.शिर्डी, ता.राहता, जि.अहमदनगर इनके अनार के बगीचे का फोटो

- अनार टिश्यूकल्चर पौधों का निर्माण करनेवाली देश की एकमात्र कंपनी
- अनार टिश्यूकल्चर पौधों का द्विस्तरीय हार्डनिंग के पश्चात वितरण
- पूर्णरूप से रोग परीक्षण करने के पश्चात जीवाणु झुलसा मुक्त पौधों की आपूर्ति करनेवाली देश की एकमात्र कंपनी
- जमीन से ६ इंच के ऊपर छाया के अंतर्गत फलन
- अधिकतम वृद्धि एवं अतिशय आकर्षक रंग के फल
- कम समय में ही अधिक व निर्यात योग्य गुणवत्ता के फलों का विकास
- जीवाणु झुलसा और सुखा रोग के हर राज्य व हर जिले में प्रसार को रोकने का एकमात्र विकल्प – जैन टिश्यूकल्चर अनार पौधा

* शर्तें लागू

जैन ड्रिप®
प्रति बूँद, फसल भरपूर!

जैन™
जन इरिगशन सिस्टम्स् लि.
छोटे छोटे कदम. आसमाँ छूने का दम.

जैन टिश्यूकल्चर™
अधिक उत्पादन – अधिकतम लाभ।

बुकिंग के लिए संपर्क करें: जलगाँव ९७०४९५५३१७, ९४२२७७६७१८, ९४२२७७४९८१,
नंदुरबार: ९४२२७७४९७५, **पुणे:** ९४२२७७४९२३, **अहमदनगर:** ९४०३६९५९०९, **नासिक:** ९४०७७०६२५,
सोलापुर: ९४२२७७४९३२, ९४२२७७६८२६, **सांगली:** ९४०३०८०१७२, **अमरावती:** ९४०३०८०१३४.

जैन टिश्युकल्चर पार्क, जलगाँव

टिश्यूकल्चर लैब

ग्रीन हाऊस का आंतरिक दृश्य

पाली हाऊस का आंतरिक दृश्य

कृषि, कृषक एवं जैन

जैन इरिगेशन सिस्टम्स लि., एक विभिन्न अस्तित्व वाली कम्पनी है। विश्व में २८ उत्पादन इकाइयों के साथ हमारी मौजूदगी है। हमारे उत्पाद ६७०० विक्रेताओं एवं वितरकों की सहायता से विश्व के ११६ देशों को प्रदाय किये जाते हैं। ५० से अधिक वर्ष की समर्पित सेवा से जैन ने किसानों के साथ अपने को स्थायी रूप से बाँधा है। भारत में जैन इरिगेशन, क्रांतिकारी धारणा "माइक्रो इरिगेशन" को बढ़ाने में अग्रणी हुई है।

लगातार अनुसंधान एवं विकास के प्रयास से जैन ने इस तकनीक को किसानों के लिए भी सभी तरह की मिट्टी, फसल एवं जलवायु में अपनाने के लिए अपना एक मिशन बनाया है। आज जैन इरिगेशन टपक सिंचाई की समानार्थी है। काश्मीर में सेब हो, केरल में नारियल हो, आसाम में चाय हो या गुजरात में कपास, आज भारतीय किसान एक ही सिस्टम को पसंद करता है वह है जैन इरिगेशन सिस्टम। यह कम्पनी द्वारा लगातार किये जा रहे अनुसंधान का ही परिणाम है कि २० वर्षों से जैन इरिगेशन द्वारा किसानों को उच्च गुणवत्तायुक्त टिश्यूकल्चर के पौधें भी उपलब्ध करवाये जा रहे है।

यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है कि जैन इरिगेशन धान की खेती में जो पारम्परिक रूप से खड़े पानी में ही होती रही है टपक सिंचाई पद्धति के प्रयोग में अग्रणी हुई है उसी तरह जैन इरिगेशन के अग्रणी प्रयास ने टपक सिंचाई के दलहनी एवं तिलहनी फसलों में भी उपयोगी सिद्ध कर दिया है जिससे पानी, ऊर्जा, एवं खाद्य पदार्थ सुरक्षित रह सके।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आज जैन ने भारत के सभी कोने में ५२ अलग अलग फसलों में लगभग ५५,००,००० एकड़ रकबे में आधुनिक सिंचाई संयन्त्र स्थापित किये है। साथ ही टिश्यूकल्चर पौधों के क्षेत्र में भी जैन इरिगेशन ने भारत के १६ राज्यों में ३ फलों के लगभग २३ करोड़ पौधों का २५०००० एकड़ रकबे मे विस्तार किया है।

जैन इरिगेशन सिस्टम्स् लि.
छोटे छोटे कदम, आसमाँ छूने का दम।®

जैन टिश्यूकल्चर
अधिक उत्पादन – अधिकतम लाभ।

जैन प्लास्टिक पार्क, पो. बॉ. ७२, बांभोरी, जलगाँव - ४२५ ००१. फोन: ०२५७-२२६००११, फॅक्स: ०२५७-२२६१११११,
ई-मेल: jisl@jains.com , वेबसाईट: www.jains.com, CIN: L29120MH1986PLC042028;